कविवर श्री अवधेश कृत श्रमणा महाकाव्य में काव्य, संस्कृति और दर्शन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में

पी० एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

वर्ष 2006

शोधार्थी :
संजीव कुमार श्रीवास्तव
(एम.ए. हिन्दी, एम. ए. संस्कृत)
उप प्रधानाचार्य
सन्नी कॉन्वेन्ट उ०मा० विद्यालय
झाँसी (उ.प्र.)

शोध निर्देशिका :
डॉ० (श्रीमती) कमलेश आनन्द
(रीडर हिन्दी विभाग)
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी (उ०प्र०)

प्रमाण – पत्र

सहर्ष प्रमाणित करती हूँ कि संजीव कुमार श्रीवास्तव ने मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय के शोध केन्द्र बुन्देलखण्ड़ महाविद्यालय झांसी से हिन्दी विषय के शोध छात्र के रूप में पंजीयित होकर " कविवर श्री अवधेश कृत " श्रमणा महाकाव्य में काव्य, संस्कृति और दर्शन विषय" पर अपना शोध कार्य पूर्ण करने हेतु निर्धारित अवधि तक यथाविधि निर्देशन प्राप्त किया। अपनी प्रशंसनीय प्रतिभा और गम्भीर एवं सतत् अध्यवसाय के द्वारा इन्हौंने अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण कर लिया है।

उर्पयुक्त शोध प्रबन्ध सर्वथा मौलिक और महत्वपूर्ण है। मैं इसका परीक्षण किये जाने हेतु उचित कार्यवाही के लिये अपनी संस्तुति प्रदान करती हूँ।

दिनांकः 30-4-06

शोध निर्देशिका

डॉ0 (श्रीमती) कमलेश आनन्द
(रीडर हिन्दी विभाग)
बुन्देलखण्ड़ कालेज,
झाँसी, उ0 प्र0

घोषणा – पत्र

मैं घोषणा करता हूँ कि बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय झाँसी के अर्न्तगत हिन्दी विषय में विद्यावाचस्पति की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध कविवर "श्री अवधेश कृत श्रमणा महाकाव्य" में काव्य, संस्कृति और दर्शन" मेरा मौलिक कार्य है। मेरे अभिज्ञान से प्रस्तुत शोध का अल्पांश अथवा पूर्णांश किसी भी विश्वविद्यालय में विद्यावाचस्पति अथवा किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया है।

दिनांकः 30-4-06

शोध – छात्र

Sanjeev
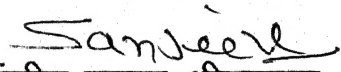
संजीव कुमार श्रीवास्तव

(एम0 ए0, हिन्दी, संस्कृत)

आभार

सर्व प्रथम मैं उस परमपिता परमात्मा की अत्यंत कृपा मानता हूँ जिसकी यह सारी सृष्टि स्वयं काव्य है। तत्पश्चात मैं डा0 मनुजी श्रीवास्तव के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्हौंने मुझे हिन्दी से एम0 ए0 के लिये प्रेरित किया। तत्तपश्चात हिन्दी विभागाध्यक्ष डा0 मनुजी श्रीवास्तव ने मुझे कविवर श्री अवधेश जी द्वारा रचित श्रमणा महाकाव्य पर लघु शोध प्रबन्ध के लिये प्रेरित किया। श्रमणा महाकाव्य निश्चित ही एक वृहद काव्य था। मैंने उसका अध्ययन किया। उसकी गम्भीरता, मौलिकता और उपयोगिता देखते हुये डा0 मनुजी का सुझाव अच्छा लगा। स्वाभाविक था कि इस महान ग्रन्थ पर एक शोध प्रबन्ध लिखा जाना उचित था। मेरे इस विचार को पिताश्री गोपाल शरण श्रीवास्तव और माता श्रीमती कान्ति देवी श्रीवास्तव ने बल दिया और मैं श्रमणा महाकाव्य पर शोध प्रबन्ध लिखने पर कटिबद्ध हुआ। यह सौभाग्य की बात है कि डा0 (श्रीमती) कमलेश आनन्द ने निर्देशिका बनकर मेरा पथ प्रर्दशन किया। उनका मैं सदैव आभारी रहूँगा। इस शोध प्रबन्ध के लेखन के कार्य में कुछ परेशानियां उत्पन्न हुयी। जिन्हें बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय की पूर्व कुलपति डा0 (सुश्री) गार्गी ने निवारण करके मुझे आभारी बनाया इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। इस विषय में शोध प्रबन्ध समिति के तत्कालीन संयोजक डा0 रामगोपाल गुप्ता का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे साहस और सम्बल देकर इस कार्य को पूर्ण करने का आशीर्वाद दिया। इसके साथ–साथ मैं अपनी पत्नि श्रीमती अलका श्रीवास्तव की भी विशेष आभारी हूँ जिन्होंने आपने विचारो के साथ–साथ मेरा पूर्ण सहयोग किया और लेखन कार्य में मदद की।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन कार्य में पत्नि श्रीमती अलका श्रीवास्तव के अलाबा मैं अपने सभी परिवारजनों विशेषतयः श्री प्रभु दयाल खरे जो कि रिटायर्ड प्रधानाचार्य हैं। और उसके अलाबा श्री देवेन्द्र कुमार खरे, श्रीमती अनूप कुमारी, श्री जितेन्द्र खरे, श्री विवेक खरे, श्री राजेन्द्र कुमार खरे, श्री धर्मेन्द्र कुमार खरे, श्री राजीव खरे, कु0 शैली खरे, श्री सर्वेश सक्सेना, श्री अनिल भटनागर, श्री विजय खरे ने सहयोग दिया।

इस शोध प्रबन्ध के कतिपय गूढ़ रहस्य, किलिष्ट शब्द विन्यांस, भावों की गम्भीरता एवं अन्य अनेक रहस्योदघाटन के लिये मैं श्रद्धेय कविवर अवधेश जी का भी परम आभारी हूँ जिन्होंने समय–समय पर मुझे दिशा बोध दिया। इसके साथ–साथ उन सभी सहयोगियों का परम कृतज्ञ हूँ जिन्होंने किसी न किसी प्रकार वांच्छित सहयोग देकर मुझे कृतार्थ किया। टंकण के कार्य के लिये मैं श्री सुशील कुमार शास्त्री के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ साथ ही उन सभी का जिन्होंने जाने अनजाने में मुझे सहयोग देकर इस कार्य को सम्पन्न कराया।

Sanjeev

संजीव कुमार श्रीवास्तव

प्राक्कथन

संसार में अधिकतर काव्य का क्षेत्र नर क्षेत्र ही हैं। नरत्व की बाह्म प्रकृति और अंतः के नाना सम्बन्धों और पारस्पति विधानों का संकलन अथवा उद्धावना ही काव्यों में प्रायः पायी जाती हैं। प्राचीन महाकाव्य और खण्डकाव्यों मनुष्येतर वाह्म सृष्टि और समस्त चराचर के क्षेत्र भी आ जाते है पर मुख्य यात्रा नर क्षेत्र की ही होती है। बाल्मीकि रामायण में भी बीच–बीच में कुछ ऐसे वर्णन मिलते है जिसमें कवि वाह्म प्रकृति से नहीं बच सका हैं। किन्तु उसका प्रधान विषय लोक चरित ही है। अन्य प्रबन्ध काव्यों के सम्बन्ध में भी यही बात कहीं जा सकती हैं। " मनुष्यों के रूप, व्यापार या मनोवृत्तियों के सदृश्र्य साधर्म्य की दृष्टि से जो प्राकृतिक वस्तु व्यापार आदि लाये जाते हैं उनका स्थान भी गौण ही समझना चाहिऐं वे नर सम्बन्धी भावना को ही तीव्र करने के लिये रखे जाते है।"

उपरोक्त विचारों के अनुसार हिन्दी में जितने काव्य लिखे गये है उनमें यही पृष्ठभूमि दिखाई देती है। जहां तक रामचरित काव्य का प्रश्न है इस बुन्देलखण्ड़ से तुलसी का रामचरित मानस, केशव की रामचन्द्रिका, मैथिलीशरण गुप्ता का साकेत प्रमुख है जो महाकाव्य की श्रेणी में आ जाते हैं। बुन्देलखण्ड़ वसुन्धरा अनादि काल से साहित्य और शौर्य की गाथा रही हैं। यहां प्रकृति सौन्दर्य एवं श्रम सरिता की छटा अहिंर्निश प्रवाहित रहती हैं। वैदिक और पौराणिक काल के अनेक ऋषियों की बुन्देलखण्ड़ तपोभूमि रही हैं। विश्व प्रसिद्ध संस्कृति धर्म के दो अद्वितीय ग्रन्थ बाल्मीकि रामायण एवं महाभारत के रचयिता महर्षि बाल्मीकि और वेदव्यास इसी बुन्देलखण्ड़ वसुन्धरा के सूर्य चन्द्र है जिनका प्रकाश विश्व को अनादि काल से मिलता रहा और भविष्य में मिलता रहेगा। इस बुन्देलखण्ड़ की अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन विभूतियां आज भी उसी भांति अज्ञात है जिस प्रकार सागर के गर्भ में अनेक रत्न छिपे रहते है उन रत्नों को खोजकर बाहर लाने पर ही उनका सही मूल्यांकन हो पाता हैं। श्रमणा महाकाव्य अवधेश जी की एक उत्कृष्ट रचना है। यद्यपि श्रमणा महाकाव्य का आधार मुख्यतः बाल्मीकि और तुलसीकृत रामायण है किन्तु इसमें सर्वत्र मौलिकता के दर्शन होते है।

शबरी (श्रमणा) ऐसी नगण्य, दलित, उपेक्षित नारी पात्र को नायिका के रूप में प्रस्थापित करके लोक धर्म के अनुसार श्रमणा महाकाव्य की रचना की है। इसके माध्यम से मानव जीवन की समस्त परिस्थितियां उनकी समस्याओं का निदान भारतीय धर्म और संस्कृति की काव्य भाषा में विवेचना की गई है। कर्म, ज्ञान और उपासना लोकधर्म के तीन अवयव जन समाज की स्थिति के लिये बहुत प्राचीन काल से भारत में प्रतिष्ठित है। मानव जीवन की पूर्णतः इन तीनों के मेल के बिना नहीं हो सकती किन्तु जब इनमें असुंतलन उत्पन्न हो जाता है, तब साम्य स्थापित करने के लिये जन मानस के मार्ग दर्शन के हेतु कोई न कोई रचनाकार अपना शास्त्र लेकर अवतरित होता है ऐसे ही शास्त्रकारों में गोस्वामी तुलसीदास जी अब से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व अवतरित हुये थे। इस लम्बी अवधि में अनेक राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृति परिवर्तन हुये है। अनेक वर्षो की गुलामी के पश्चात लगभग पचास वर्ष से हम स्वतन्त्र है, किन्तु सही अर्थो में हमारा देश अपनी मनोवृत्तियों का आज भी गुलाम है। हमारी नैतिकता आज भी अर्कण्यता, स्वार्थपरता और जाति भेद के कीचड़ में फँसी हैं। तुलसी के जीवनकाल में देश और समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। धर्म और संस्कृति का अपहरण बड़ा ही सुनियोजित ढंग से हो रहा था समाज निराशा के झूले में झूल रहा था, उस नैराश्य काल में भक्ति के माध्यम से आशा संचार किया। उस काल के तुलसी की धरती परम सभीत थी, वह धेनु रूप रखकर देवताओं के पास अपना दुख सुनाने गई। धरती की निम्न पंक्तियों में वेदना देखिये :-

> अतिशय देख धरम की ग्लानी, परम सभीत धरा अकुलानी,
> धेनु रूप धरि हृदय विचारी, गई तहाँ जहाँ सुर मुनि झारी,
> निज संताप सुनाइस रोई, काहू ते कहु काज न होई।

उपरोक्त पंक्तियों में वर्णन उस समय के राज और समाज का है। आज परिस्थितियां बदल गई है। हम राजनैतिक दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्र है अपना राज्य अपना देश है, अपना काल है अपनी परिस्थितियां है, फिर भी हमारे समाज नैतिक स्थिति गिरती चली जा रही हैं। इसी दृष्टिकोण को लेकर श्रमणा महाकाव्य की रचना हुई जिसमें कर्म को प्रधानता दी है, ज्ञान और भक्ति उसके सहयोगी है।

भगवान ने अपनी सृष्टि में मानव को सर्वश्रेष्ठ कृति क्यों बनाया, उसे ज्ञान बुद्धि, विवेक, प्रज्ञा, दया, क्षमा, ममता आदि अनेक अलौकिक गुण क्यों प्रदान कियें। जैसे पशु–पक्षी आदि बनाये वैसा उसे भी बना देता किन्तु ऐसा नहीं है। वह " ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख रासी " है, जो सहज सुख रासी है, वह निष्तेज, समल, सहज दुख रासी क्यों बन रहा है। केवल कारण है कि वह अपने को भूला हुआ है अतः आदर्श को सामने रखकर उसे अपने कर्तव्य पर आरूढ़ होना है।" यह सत्य है कि कर्म के प्राधान्य का आदर्श सामने रखकर मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के मानव चरित्र को अपने आचरण में लाया जाये।

कर्म का आदर्श ज्ञान और भक्ति के परामर्श के साथ श्रमणा महाकाव्य इक्कीस सर्गों में पूर्ण किया गया है। कर्म में 'अहिंसा परमोधर्म' का आदर्श लेकर प्रथम और द्वितीय सर्ग में पिता द्वारा मृगशावक को वध करने पर हिंसा और अहिंसा की विशद विवेचना की गई है। सर्ग के अन्त में हिंसा पर अहिंसा की विजय प्रस्थापित हुई है। तृतीय सर्ग में काव्य का मर्म ज्ञान, भक्ति, कर्म, धर्म की मीमांसा मौतिक ढंग से हुई है। मारीच के द्वारा राम का परिचय श्रमणा को प्राप्त हुआ है। चतुर्थ सर्ग में कैकयी और दशरथ के द्वारा देवासुर संग्राम का विस्तार पूर्वक चित्रण करने में कवि को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। पंचम सर्ग में प्रधान रूप से अहिल्या की कथा के माध्यम से दलित, उपेक्षित एवं/दोषी नारियों के प्रति प्रभाव पूर्ण तर्क प्रस्तुत करके उनको निर्दोष सिद्ध किया हैं। छठवें सर्ग में विवाह संस्कार की विशद विवेचना के साथ उसके औचित्य और अनौचित्य पर प्रकाश डाला है। विवाह सम्बन्धी अनेक वर्तमान समस्याओं का निराकरण हुआ है। सप्तम सर्ग में राम सीता के विवाह का संक्षिप्त विवरण देते हुये श्रमणा के विवाह का उपक्रम है। अष्टम सर्ग में नारी का कर्तव्य और महत्ता कहीं गई है। वर्तमान सन्दर्भो में जन शक्ति की महत्ता का महत्व बतलाते हुयें दक्षिण वासियों के आवाह्न पर राम को वन आने की बात कहीं गई हैं। इसी सर्ग में कैकेयी द्वारा लोक कल्याण उददेश्य एवं लंका विजय करने के लिये राम को प्रोत्साहित किया गया है। यहां राम के द्वारा ही कैकेयी को वरदान मांगने के लिये बाध्य किया गया है। इस प्रसंग में अन्य रामायणों में दिये गये कलंक को युक्ति पूर्ण ढंग से मिटा दिया गया है।

यह प्रसंग श्रमणा महाकाव्य की मौलिक उपलब्धि हैं।

नवम् सर्ग में मोह का ज्ञान द्वारा तिरोहन हुआ है। ज्योतिष आदि ग्रहों की विवेचना की गई है। वध के लिये पशु–पक्षियों को मुक्त करके दया, ममता और अहिंसा की शिक्षा दी गई है। दसम् सर्ग में आर्यो, अनार्यो की विवेचना करते हुये अनार्य से आर्य और आर्य से अनार्य बनना कर्म के आधीन सिद्ध किया है। वर्ण, धर्म की विवेचना भी इसी सर्ग में हुई है। ग्यारहवें तथा बारहवें सर्ग में निष्काम कर्म की प्रेरणा के साथ चित्रकूट का मार्मिक वर्णन हुआ है। श्रमणा के द्वारा किष्किन्धा जाकर सर्वसम्मति से सुग्रीव को राजा बनाकर समस्त वानरों को राम के लोक कल्याण कार्य में हाथ बटाँने की प्रेरणा दी गई है। लंका का हाल, रावण आदि का परिचय सूर्पनखा के द्वारा कराया गया है। दसमुख और बीस भुजाओं का अलंकारिक रूप से वर्णन हुआ है। इसी सर्ग में चरित्र की महत्ता विस्तार से बतायी गई है। तेरहवें चौदहवें सर्ग में मतंग ऋषि के द्वारा अर्थ, काम, मोक्ष, देह आत्मा, कर्म, धर्म की विवेचना करते हुये आदर्श मानव के लक्षण के साथ गुरू की महिमा का वर्णन है। श्रमणा की सेवा के द्वारा लोक कार्यो की प्रशंसा की गई हैं। ब्रह्मानन्द और विषयानन्द की विवेचना करके ब्रह्मानन्द की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई हैं। पन्द्रहवे सर्ग में वेदवती की कथा एवं मतंग के देह त्याग का वर्णन है। सोलहवें सर्ग में भौतिक एवं आध्यात्मिक साधनों द्वारा योग की विवेचना की गई है। इस सर्ग में राम गोदावरी नदी के किनारे निवास करते हैं। सत्तरहवें सर्ग में नकली साधुओं का चित्र प्रस्तुत करके सच्चे साधुओं का परिचय दिया गया है। इस सर्ग में हास्य रस का परिपाक हुआ है। सीता को वेदवती से बदलने की भूमिका बनायी गई है।

अठारहवें सर्ग में पंचवटी में सीता को राम एवं अग्नि ऋषि द्वारा समझाकर वेदवती से बदल दिया गया है। सीता अग्नित्रिषि के आश्रम में चली जाती है। उन्नीसवें तथा बीसवें सर्ग में शिव जी के द्वारा अनाचारी के वैभव एवं उत्थान–पतन के कारणों की विवेचना हुई हैं कर्म और ईश्वर इच्छा की मीमांसा की गई है। राम श्रमणा के आश्रम में पहुंच जाते है, वे मूर्छित श्रमणा को चेतना में लाते हैं। श्रमणा लंका और किष्किन्धा का सम्पूर्ण वृतान्त राम को बतलाती है, यहीं राम जूठें बेरों का दोना उठा लेते है।

किन्तु खाने में सफल नहीं होते है। इसी सर्ग में श्रमणा की लौकिक वासना एवं मोह का आवरण राम के उपदेशों से दूर हो जाता है।

इक्कीसवां सर्ग महाकाव्य का अन्तिम सर्ग है। इसमें राम सत्याचरण का उपदेश देते हैं। जीव और ब्रह्म की विवेचना करते हुये मानव जीवन के सद उपयोग करने की शिक्षा देते हैं। सद्ग्रन्थों और देवताओं से शिक्षा लेना एवं जीवात्मा को जाग्रत करने के लिये प्रेरित करते हैं। श्रमणा के माध्यम से निष्कामकर्म की शिक्षा देकर राम किष्किन्धा की ओर बढ़ जाते है। बाल्मीकि आकर श्रमणा को संक्षिप्त रूप में राम के अगले चरित्र का वर्णन करते है और आदर्श भविष्य बताकर श्रमणा को आशीर्वाद देकर बाल्मीकि विदा हो जाते है।

राम काव्य परम्परा में रामचरित मानस, रामचन्द्रिका और साकेत बुन्देलखण्ड़ के प्रमुख महाकाव्य है। बुन्देलखण्ड़ की अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन विभूतियां आज भी छिपे रत्नों की भांति अज्ञात है। जिन्हें खोजकर बाहर लाने पर ही उनका सही मूल्यांकन हो पाता है। बुन्देलखण्ड़ की रामचरित्र पर तीन महाकाव्यों की परम्परा में एक चौथे महाकाव्य, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व जाग्रत करने का प्रयास किया। अवधेश जी का काव्य जहां एक और प्राचीन परम्परा का स्वरूप प्रस्तुत करता है वहां आधुनिक युगीन स्वतंत्र चिन्तन और मौलिक विचारधारा से भी परिपूर्ण है।

श्रमणा महाकाव्य अवधेश जी की उत्कृष्ट रचना है। यद्यपि श्रमणा महाकाव्य का आधार बाल्मीकिकृत रामायण और तुलसीदास की रामचरित मानस है, किन्तु इसमें सर्वत्र मौलिक के दर्शन होते है शबरी (श्रमणा) जैसी दलित उपेक्षित नारी पात्र को नायिका के रूप में प्रस्थापित करके श्रमणा महाकाव्य में लोकधर्म का निर्वाह किया गया है। श्रमणा के माध्यम से मानव जीवन की समस्त परिस्थितियां और उनकी समस्याओं का निदान भारतीय धर्म तीनो अंग का विवेचन इस महाकाव्य के माध्यम से कवि ने किया है। आज की बदलती परिस्थितियों में नैतिकता, धर्म और संस्कृति, राजनीति आदि के परिप्रेक्ष्य में श्रमणा महाकाव्य की रचना हुई है। जिसमें कर्म को प्रधानता दी गई है, ज्ञान और भक्ति उसके सहयोगी है। प्रस्तुत महाकाव्य में अहिल्या की कथा के माध्यम से दलित, उपेक्षित एवं दोषी नारियों के प्रति प्रभाव पूर्ण तर्क प्रस्तुत करके उनको निर्दोष सिद्ध किया है।

श्रमणा महाकाव्य मौलिक चिन्तन, दृष्टांत, औचित्य, मानवीय चरित्र एवं तुलसीदास के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत करने में सक्ष्म है।
इस परिवर्तन शील युग में श्रमणा महाकाव्य समाज को नवीन दिशाऐं प्रदान कर सफल मानव जीवन हेतु सम्बल प्रदान करेगा निःसंदेह श्रमणा महाकाव्य रामकथा साहित्य में एक नूतन और मौलिक अध्याय जोड़ने में समर्थ होगा।

ग्रन्थ के उपरोक्त सन्दर्भ अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दिये गये हैं पूर्ण परिचय तो शोध प्रबन्ध के गहन अध्ययन से मिलना सम्भव है। इसमें श्रमणा महाकाव्य का भौतिक चिन्तन, दृष्टान्त, औचित्य, मानव उपयोगी चरित्र एवं तुलसी के बारे में अनेक भ्रान्तियों का तर्क पूर्ण समाधान मिलेगा। यह सत्य है कि महाकाव्य के प्रमुखपात्र राम और श्रमणा एवं अन्य पात्रों के आदर्श चरित्र आचरण में लाने से युग्म मानव (स्त्री–पुरूष) का भला हो सकता है। एक तथ्य और कहकर मैं अपनी बात पूरी करूंगी। अवतार पुरूष चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करने को ही आतें है या यों कहों कि युग दृष्टा कवि उनके चरित्र में लोकधर्म, आदर्श आचरण कान्ता सम्मति के साथ धरता है ताकि मनुष्य उन पर चलकर अपना जीवन सार्थक बनायें। अवतार पुरूष का प्रयोजन चार प्रकार से वर्णन किया जाता है। रक्षण, सन्तुलन और रंजन। श्रमणा महाकाव्य में यही सब का समावेश बड़ी सावधानी और कुशलता से किया गया है। भ्रमित मानव को यथार्थ को बोध आस्थाओं की स्थापना, भारतीय दर्शन, धर्म और संस्कृति की शंकाओं और जिज्ञासाओं का शमन एवं आदर्श जीवन दर्शन का समावेश इस महाकाव्य में भलीभांति हुआ है। शेष सुधीजन इस महाकाव्य को सहृदयता एवं निष्पक्ष भावना से अवगाहन करके निष्कर्ष पर पहुंच जायेगें। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने श्रमणा महाकाव्य की अन्तः बाह्म दृष्टि से सर्वागीण विवेचना करने का प्रयास किया। निर्धारित रूप–रेखा के अनुसार विविध पहलुओं पर विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह सब परमात्मा और गुरूजनों की कृपा का फल है।

श्रमणा महाकाव्य में काव्य, संस्कृति और दर्शन

अनुक्रमणिका

प्रथम – अध्याय

श्रमणा महाकाव्य का रूपात्मक परिचय एवं महत्व

काव्य स्वरूप और उसके भेद :

वेद का उद्घोष है "कवि मनीषी परिभू परमात्मा भी कवि है। यह सम्पूर्ण सृष्टि उसकी कविता है उसकी कविता ईश्वर का प्रतिनिधि होता है, इसीलिये उसकी कविता अजर, अमर होती हैं वैदिक साहित्य से लेकर बाल्मीकि तक संस्कृत साहित्य की प्रचुर मात्रा में रचनाऐं हुई हैं। किन्तु महाकाव्य की परम्परा प्रथमतः बाल्मीक ने ही डाली है, अर्थात संस्कृत महाकाव्य के पहले कवि बाल्मीकि है। तत्पश्चात पुराणों की रचना हुई। और यही परम्परा हिन्दी काव्य धारा में प्रभावित हुई। तत्पश्चात वेद व्यास, माघ, बाण कालिदास, संस्कृत साहित्य के महाकवि हुये। हिन्दी साहित्य परम्परा में "पृथ्वी राजरासो" डिंगल भाषा का प्रथम महाकाव्य है,। जायसी का पदमावत एवं तुलसी का रामचरित मानस और केशव की रामचन्द्रिका, इस महाकाव्य की परम्परा में प्रतिपादित हुये। आधुनिक काल में हिन्दी के तीन महाकाव्य प्रसिद्ध है मैथिली शरण गुप्त का साकेत है, जय शंकर प्रसाद की कामायनी, इनके पूर्व हरि औध ने "प्रिय प्रवास" की रचना की है। इनके बारे में विद्वानों के यद्यपि मतभेद है फिर भी बहुत से विद्वान इन कृतियों को महाकाव्य की श्रेणियों में लेते है।

इसी परम्परा में बुन्देलखण्ड के स्वनाम धन्य कविवर अवधेश जी का श्रमणा महाकाव्य भी महाकाव्य की परम्परा को आगे बढ़ाता है। देखना यह है कि श्रमणा महाकाव्य काव्य की कसौटी पर किस प्रकार खरा उतरता है। इसके लिये पहले
महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक होगा –

महाकाव्य का स्वरूप :

महाकाव्य के स्वरूप के बारे में विद्वाने में भारी मतभेद है आचार्य विश्वनाथ जो कि संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान है उन्होंने महाकाव्य के निम्न स्वरूप बताये है :—

1. कथावस्तु ऐतिहासिक, पौराणिक या अन्य रूप में प्रख्यात हो।
2. उसका नायक कोई महत्वपूर्ण देवता या धीरोदात्त क्षत्रिय हो।
3. उसमें नाटक की सभी सन्धियां उपलब्ध हो।
4. महाकाव्य सर्गबद्ध हो।
5. महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से किसी एक की प्रधानता हो और अन्य रस अंगीय रूप में आये हो।
6. नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तु के संकेत से महाकाव्य का आरम्भ हो।
7. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में किसी एक को अतिन्तम फल के रूप में स्वीकार किया गया हो।
8. घटनाओं के अनुसार सर्गो के शीर्षक दिये जाये।
9. सर्गो की संख्या आठ से अधिक हो पर वे न तो वे बहुत छोटे हो न बहुत बढ़े।
10. उसका शीर्षक कवि का नाम, कविता का विषय, उसका नायक या अन्य आवश्यक तत्व पर आधारित हो।
11. समस्त सर्ग की रचना एक ही प्रकार के छन्दों में हो।
12. प्रातः, रात्रि, आखेट, प्रदोष, सागर, ऋतु आदि प्राकृतिक दृश्यों का समावेश हो।

13. उपरोक्त मान्यताऐं प्राचीनकाल तक के महाकाव्यों के लिये प्रचलित थी किन्तु वर्तमान में अनेक विद्वानों ने थोड़ा बहुत परिवर्तन किया है। जय

शंकर प्रसाद जी के अनुसार ''महाकाव्य किसी घटना, वर्णन या चरित्रतत्व की प्रमुखता के साथ कथावस्तु तथा कलागत शिल्प में परितर्वन युगों के अनुसार हुआ है''। इससे महाकाव्य की आंतरिक गरिमा, महत्ता और उदात्ता व ग्राहय्ता में कमी नहीं आनी चाहिये। इसके साथ–साथ निम्न तथ्य भी आवश्यक है।

1. परमलक्ष्य, महत्व, प्रेरणा, उद्‌देश्य
2. गाम्भीर्य और गुरूत्व
3. जीवन का समग्र चित्र और महत्वपूर्ण कार्य
4. गरिमापूर्ण उदात्त शैली
5. प्रभावकारी गम्भीर रस योजना
6. क्रमबद्ध जीवन कथानक
7. महत्वपूर्ण नायक

उपयुक्त विवचेन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन काव्य औन नवीन काव्य धारा के लक्षणों में काफी समानतायें प्रतीत होती है। मात्र शाब्दिक अंतर एवं संक्षिप्तता ही परिलक्षित होती है। आचार्य विश्वनाथ के द्वारा जो लक्षण निर्देशित किये गये है वे सभी रूपतामक और लॉन्जाइनस है। जो कि हिन्दी के आधुनिक युगीन महाकाव्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है इस प्रकार आधुनिक महाकाव्यों में नायक या नायिका का चरित्र–चित्रण यथार्थता और पूर्णता के बिलकुल निकट आ जाता है आधुनिक दृष्टि के अनुसार मानवता के कल्याण के लिये प्रत्यनशील व्यक्ति ही महाकाव्य में नायक बनता है श्रमणा महाकाव्य के महाकाव्यत्व पर विचार करने के लिये प्राचीन एवं नवीन विचारधाराओं के साथ–साथ आधुनिक युग की मूल प्रवृत्तियों को भी आधार बनाया गया है।

पाश्चात्य विद्वानों के विचार :–

पाश्चात्य विद्वानों में डिक्शन, बाबरा और बाल्टर आदि ने महाकाव्य के विषय में अपने मत प्रस्तुत किये है। पाश्चात्य मान्यता के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार है :–

1. महाकाव्य विशालकाय होना चाहिये।
2. उसका विषय लोकविदित, प्रतिष्ठित तथा सर्वप्रिय हो।
3. उसमें असाधारण गुणों की चर्चा होनी चाहिये
4. महाकाव्य के महान उद्‌देश्यों के साथ मैत्री हो ।
5. विद्रोह के स्वर की गहराई हो।
6. आशा की विशालता हो।
7. मानवीय कल्याण हेतु प्रत्यनशीलता हो।
8. जीवन यात्रा में दृढ़ता हो।
9. भावना की आत्मा का स्वर हो।

सामान्यतः भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों के लक्षणों को पृथक नहीं किया जा सकता।

महाकाव्यः

महाकाव्य विस्तृत परिधि वाला एक ऐसा काव्य है जिसकी कथा–वस्तु गम्भीर और प्रशस्त होती है। इसमें जीवन की विविधता का दिखाना अनिवार्य है। इसमें प्रबन्ध काव्य और खण्ड काव्य दोनो का समावेश किया जा सकता है। जीवन कि कलामयी और सूक्ष्म अभिव्यक्ति ही काव्य का प्राण है और कवि अपनी उदान्त कल्पना, असाधारण वर्णन शक्ति और विचार गाम्भीर्य से काव्य में अद्‌भुत सौदर्य उत्पन्न कर देता है। महाकाव्य युगीन साहित्य को लेकर चलता है। तथा इसमें युगीन समस्याओं के

साथ–साथ युग के परावर्ती समस्याओं का भी निदान कर आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है। विचारकों के अनुसार महाकाव्य के दो भेद है ।

1. प्रबन्ध काव्य 2. खण्ड काव्य

प्रबन्ध काव्यः

जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि प्रबन्ध काव्य में प्रबन्धात्मकता का समावेश होता है माना किसी एक व्यक्ति या किसी एक विषय के सम्बन्ध में उसके जीवन संदर्भो की व्याख्या की जा कर उसको एक क्रम में बांधा जायें तो वह प्रबन्ध काव्य की श्रेणी में आ जाता है। प्रबन्ध काव्य का आधार कोई निश्चित कथानक होता है और उसके छन्दों में पूर्वापर सम्बन्ध होता है उदाहरणार्थ साकेत में लक्ष्मण को ही केन्द्र मानकर कथावस्तु का समावेश किया है। पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज की जीवन की घटनाओ का क्रमवार वर्णन किया गया है। प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत ऐतिहासिक सामाजिक, आध्यात्मिक, रूपात्मक, कलात्मक विषय आते है, प्रबन्ध काव्य में इन विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी सभी पहलुओं पर क्रमबद्ध विचार विश्लेषण किया जाता है।

खण्डकाव्य :

खण्डकाव्य का अर्थ टुकड़ा होता है लेकिन खण्डकाव्य महाकाव्य का टुकड़ा नहीं होता है क्योंकि महाकाव्य के टुकडे करने से वे अनेक खण्डकाव्य नहीं बन सकते है। खण्डकाव्य के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के जीवन की विशेष घटना का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। उसी प्रकार ऐतिहासिक, सामाजिक आदि विषयों का भी किसी एक विशेष पक्ष का विशलेषण खण्डकाव्य के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है।

श्रमणा महाकाव्य का स्वरूप एवं नामकरण :

महाकाव्य की उपर्युक्त विवेचना करने पर यह स्पष्ट होता है कि कविवर अवधेशकृत श्रमणा महाकाव्य एक विशाल एवं महत्वपूर्ण महाकाव्य है क्योंकि इस महाकाव्य में यथा संभव सभी लक्षण और परिभाषाऐं समाहित की कई है।

1. सर्गो का उचित समावेश : श्रमणा महाकाव्य में कथानक की परिधि अत्यंत विस्तृत है जिसको 21 सर्गो में विभक्त किया गया।

2. नायक : किसी भी महाकाव्य में मुख्य पात्र नायक या नायिका होती है। श्रमणा के नायक भी यद्यपि पुरूषोत्तम राम ही है। लेकिन इसमें मुख्य भूमिका श्रमणा (शबरी) की रही है जो कि पूर्व जन्म में इन्द्र के यहां सम्मानीय देवांगना थी। अन्यत्र शंकर व सुतीक्ष्ण के अनुसार उसे भक्ति का अवतार कहा गया है। ब्रह्मा की दो शक्तियां माया और भक्ति है। महाकवि तुलसीदास जी ने माया को सीता का अवतार एवं भक्ति का अवतार स्वयं श्रमणा को माना है क्योंकि उसमें भक्ति के नौ गुणों का स्वभाविक ही समावेश मौजूद है।

रचनाकार ने श्रमणा को भक्ति का अवतार बताते हुये कहा है :–

दासरथी श्रीराम ब्रह्मा है – माया सात्विक सीता
भक्ति स्वरूपा प्रकट हुयी है, श्रमणा ज्ञान पुनीता।

यद्यपि राम उप नायक है फिर भी परम्परा के अनुसार उनका चरित्र चित्रण हुआ है युग के अनुसार महाकाव्य के स्वरूप में परिवर्तन भी सम्भव है देशकाल, परिस्थिति के अनुसर परिवर्तन आवश्यक है। श्रमणा महाकाव्य में शबरी रामायण की बनकर नहीं रह गयी है बल्कि वह उदात्त नायिका, लोक

कल्याण की बहुमुखी प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत हुयी है। श्रमणा श्रेष्ठ नारी के रूप में राम की सहयोगिनी बन कर आई है।

"अधम ते अधम अधम अति नारी
ताहि पे मति मन्द गंवारी "

शबरी एक सर्वथा मौलिक और नूतन परिवेश में प्रस्तुत हुयी है कवि ने पर्याप्त रूप से नायिकत्व के सभी गुण दिग्दर्शित किये है।

4. रसः

महाकाव्य में रसों का भी बहुत महत्व है। श्रमणा महाकाव्य में यू तो साहित्य के दसों रसों का स्थान–स्थान पर स्वरूप दिखाई पड़ता है किन्तु मुख्य (प्रधान) रस शान्त ही है जो श्रृंगार को आधार बनाकर आया है। प्रथम और द्वितीय सर्ग में पूर्व राग की प्रस्थापना करते हुये रति का प्रादुर्भाव हुआ है। धीरे–धीरे यही रति शान्त रस में परिणत हो गई है अर्थात लौकिक रस अलौकिकता में परिणत हो गया है। वासनात्मक प्रेम निर्वेद में बदल गया है इसका आधार तुलसीदास जी ही है। फिर कवि की मौलिक उद्भावनायें रस–निष्पत्ति में सहायक हुयी है। शान्त और श्रृंगार के साथ–साथ श्रमणा में सभी रसों का परिपाक पर्याप्त रूप से हुआ है। सर्वचार में भी इसका प्रत्यक्ष स्वरूप देखा जा सकता है।

5. महाकाव्य की पौराणिकता एवं विविध स्वरूप :

श्रमणा महाकाव्य के गम्भीरतापूर्वक अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि मूल कथानक तुलसीकृत रामायण और बाल्मीक रामायण से लिया गया है किन्तु आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण, कम्ब रामायण, कृतवास रामायण तथा विष्णु पुराण आदि से भी लिया गया है बाल्मीकि रामायण में ऐतिहासिक तत्व दिखाई पड़ते है। प्रायः लोगो का विचार है कि बाल्मीकि रामायण राम के समकालीन थी। यह किसी सीमा तक ठीक भी है

किन्तु बाल्मीकि ने राम का चरित्र मुनि नारद के द्वारा सुना है ऐसा बाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग से प्रतीत होता है कवि ने इस तथ्य की पुष्टि में लिखा है–

हरगाथा का मूल सदा इतिहास सत्य होता है,
सूक्ष्म सत्य का विविध रूप पौराण कृत्य होता है।
राम नित्य कल्पना सत्य है, सुन्दर और शिवम है,
स्वयं प्रमाण न हो लेकिन वे कथा प्रमाण स्वयं हैं।

श्रमणा महाकाव्य में सर्ग व छन्द योजना सम्पूर्ण महाकाव्य का कथानाक बहुत ही सुगठित ढंग से 21 सर्गो में पूरा किया गया है जिसका नामकरण सर्ग की संख्या पर ही किया गया है। जो दो खण्डों में विभक्त है। 1. गृह खण्ड 2. वन खण्ड

पूर्वाध में गृह खण्ड है इसमें 1 से लेकर 10 सर्ग तक की कथा आती है इसमें श्रमणा के जन्म से लेकर घर छोड देने तक की कथा है उत्तरार्घ में जो वन खण्ड के नाम से लिखा गया है उसमें 11 से लेकर 21 सर्ग की कथा है। इसमें श्रमणा के वन आकर सारे क्रियाकलापों का वर्णन है।

छन्द योजना :

महाकाव्य की छन्द योजना सुगठित है। अधिकतर मात्रिक छन्द का प्रयोग है जो 28 मात्रा का है इसके साथ–साथ वर्णिक व गणिक छन्द भी प्रयोग हुये है। अतुकान्त घनाक्षरों का प्रयोग हुआ है। छन्दों के बारे में कवि ने अपनी भूमिका में स्पष्टीकरण कर दिया गया है 20 और 24 मात्रा के छन्द भी है, जो कवि के स्वयं निर्मित है इस प्रकार पुराणोतिहासिकता के साथ–साथ सर्वत्र मौलिक उद्भावना का समावेश हुआ है। साकेत के पश्चात् युग प्रवृत्तियों की समग्रता का प्रतिपादन करने में श्रमणा महाकाव्य सक्षम है इस महाकाव्य में अध्यात्म, दर्शन, इतिहास, समाज शास्त्र, योगतन्त्र विज्ञान,

मनोविज्ञान, राजनीति विज्ञान, संस्कृति, आयुर्वेद, यथा स्थान देखने को मिलता है। इसमें त्याग निवृत्ति, प्रवृत्ति, राग, भोग आदि सभी उपकरण समाहित है। पश्चिमी साहित्य के अतिरिक्त भारतीय साहित्य का प्रचुर मात्रा में आदर्श प्राप्त होता है उपनिषद् का ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मंत्र "त्येन व्यक्तिेन भुंजीथा की यथावत् प्रस्थापना श्रमणा महाकाव्य में की गयी है।

श्रमणा महाकाव्य का शीर्षक :

श्रमणा महाकाव्य का शीर्षक उसकी नायिका श्रमणा के नाम पर ही दिया गया है और शबरी के राम लिखकर स्पष्ट किया गया है। काव्य का विषय धरातल सामाजिक और आध्यात्मिक है इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में प्राचीन और नवीन विचारधारा के अनुसार लगभग सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते है। नये युग के प्रवर्तक प्रसाद जी ने भी परम्परागत रूढ़ियों को त्यागते हुये महाकाव्य का रूप निखारा है इसलिये श्रमणा महाकाव्य में कुछ परिवर्तन हुआ जो युगानुरूप है, जिससे महाकाव्य की गरिमा में कोई कमी नहीं आई है। आचार्य विश्वनाथ ने जिन लक्षणों का उल्लेख किया है वे सब इस श्रमणा महाकाव्य में दिखाई पड़ते है।

श्रमणा महाकाव्य में प्रकृति चित्रण :

आधुनिक काव्य में प्रकृति चित्रण की जितनी विधाऐं प्रचलित है। प्रायः सभी विधाओं के दर्शन श्रमणा महाकाव्य में होते है श्रमणा महाकाव्य में प्रकृति के आलम्बनों का विविध रूपों में चित्रण अनेक स्थानों पर किया गया है। मनुष्य का हृदय भावनात्मक है, अतः कवि ने अनेक भावों के संचरण के लिये ऐसे लोक सामान्य और विश्व हृदयस्पर्शी प्रकृति के आलम्बनों को आधार बनाया है जो एक ओर तो लोक हृदय के पहचान की शक्ति के परिचायक हैं, और दूसरी ओर पाठक हृदय के साथ उनका पूरा तालमेल हैं। इसमें वन, उपवन, पक्षियों का कुंजन, तारकमय गगन, सुरभिमय

पवन, ज्यात्सना, निर्झर, सरिता, पर्वत, सागर, रात्रि, प्रातः, ग्रीष्म, पावस, शिशिर ऋतु आदि सभी प्रकृति के उपकरणों का यथा स्थान प्रयोग हुआ है।

श्रमणा महाकाव्य में नाट्य संधिया :

महाकाव्य में नाट्य संधियों का महत्व कम नहीं है। इस दृष्टि से श्रमणा महाकाव्य में लगभग सभी नाट्य संधियां दृष्टिगोचर होती है। प्रमुख नाट्य संधियाँ पांच है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण ये पांचों संधियां यथा स्थान प्रयोग हुई है। जब भी दो अलग–अलग कथाओं को जोड़ते है तो उनकी भावनायें मिलाई जाती है इस विधा को संधि कहते है। श्रमणा महाकाव्य के प्रथम सर्ग में पूर्व जन्म की देवागंना जो इन्द्र के दरवार में थी, वह विष्णु भगवान की ओर आकृष्ट होती है तो इन्द्र उसे दण्ड के रूप में अधम योनि में जन्म लेने का श्राप देते है। और उसी कारण देवागनां श्रमणा (शबरी) के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेती है। चूंकि श्री राम भी विष्णु का अवतार है अतः श्रमणा की पूर्वानुरूक्ति इस जन्म में भी यथावत् रहती है द्वितीय सर्ग में नारद ऋषि श्रमणा के पिता को अयोध्या में श्रीराम जन्म का वृत्तान्त बतलाकर श्रीराम और शबरी की एकरूपता बतलाते है। तृतीय सर्ग में भी श्रीराम के द्वारा शबरी को भामिनी कहने का औचित्य बताया है मारीचि के द्वारा मख की रक्षा हेतु आये श्रीराम का विस्तृत परिचय इसी सर्ग में दिया है। यहां मुख्य संधि हो जाती है। चर्तुथ सर्ग में मारीचि ने बताया है कि श्रमणा एवं लोकहित हेतु विष्णु ने भगवान राम का अवतार धारण किया है इसी भावना का विस्तार पंचम सर्ग में हुआ है। तोते द्वारा अहिल्या उद्वार एवं इन्द्र के छल की कथा सुनकर श्रमणा बड़ी प्रसन्न होती है। छटवें सर्ग में श्रमणा तर्क देते हुये सति के समझाने पर भी विवाह से इन्कार कर देती है क्योंकि उसके मन में राम से मिलने की उत्कंठा प्रबल हो जाती है। सप्तम् सर्ग में श्रमणा की वन में नारद से भेंट होती है और नारद द्वारा धनुष यज्ञ, राम सीता के विवाह का पता चलता है जिससे श्रमणा को बहुत क्लेष

होता है। यही प्रतिमुख संधिया है। अष्टम सर्ग में श्रमणा के पिता उसे नारी की महत्ता बतलाते हुये नवधा भक्ति एवं पतिव्रत धर्म में एकरूपता बतलाते है इसी सर्ग में दक्षिण वासी जब श्रमणा से रावण द्वारा पीड़ित होने की बात कहते है तब वह उन्हें अयोध्या भेजती है ताकि वह उनकी करूण कथा सुनकर वन गमन करें। नौवें सर्ग में श्रमणा अपने विवाह में भोजन के लिये पशुओं की हिंसा की बात मालूम होने पर उन्हें प्रकोष्ठ खोलकर पशुओं को मुक्त कर देती है और स्वयं भी वन को प्रस्थान करती है जिसके कारण उसके पिता देह त्याग देते है। दशम् सर्ग में विश्वामित्र से साक्षात्कार होता है और हनुमान का परिचय देते हुये वे उसे किष्किन्धा जाने को कहते है। ग्यारहवें सर्ग में श्रमणा की जटायु से भेट होती है और राम के सहयोग के लिये तैयार रहने को कहती है। वारहवें सर्ग में श्रमणा की सूर्पनखा से भेंट होती है और उसके द्वारा लंका का सम्भावी घटनाक्रम का पता चलता है। तेहरवें सर्ग में राम के बारे में अर्न्तद्वन्द्व करती है। और मतंग ऋषि के आश्रम में पहुंचती है यही गर्भ संधि की पूर्ति होती है। चौदहवें सर्ग में मतंग ऋषि श्रमणा को भक्ति का अवतार बतलाते है। पन्द्रवें सर्ग में मतंग ऋषि सीता की सुरक्षा के लिये वेदवति से सीता को बदलने का परामर्श देते है। सोलहवें सर्ग में सुतीक्षण विराट समाप्ति की घोषणा कर देती है और सीता के अपहरण की बात बताकर राम लक्ष्मण द्वारा उनकी मुक्ति की बात कहती है और इसी सर्ग में रावण का श्रमणा के आश्रम पर आगमन होता है। सत्रहवें सर्ग में मारीच रावण द्वारा सीता हरण की योजना बताता है श्रमणा सीता को वेदवती से बदलने के लिये अग्नि ऋषि के पास जाने की बात सोचती है। अठारहवें और उन्नीसवें सर्ग में वेदवती को अग्नि ऋषि के साथ राम की कुटिया पर भेज देती है यही विमर्श संधि है। वीसबे सर्ग में सीता हरण के पश्चात श्रमणा व्याकुल होकर राम के आने की प्रतीक्षा करती है ।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में नाटक की सभी संधियां दिखाई देती है। यह संधियाँ इतने स्वभाविक रूप से आयी हैं कि एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती हुई नये ढंग से चमत्कारपूर्ण हो जाती है।

पौराणिक कथा का स्वरूप :

जैसाकि भूमिका में कहा जा चुका है कि श्रमणा का आधार पौराणिक ही है। बाल्मीकि रामायण में रामकथा की ऐतिहासिकता भी प्रतिपादित होती है, चूंकि श्रमणा महाकाव्य का आधार बाल्मीकिकृत रामायण के साथ–साथ अन्य पुराण भी है, इसलिये इसे पुराणेतिहासिक के साथ–साथ मौलिक कल्पनाओं का आगार (समुद्र) कहा जा सकता है। इसमें दर्शन, धर्म, संस्कृति, आयुर्वेद, समाजशास्त्र आदि सभी विषयों का समावेश हुआ है।

सन्दर्भ सूची (प्रथम अध्याय)

1. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश – पृष्ठ– 10 सर्ग प्रथम
2. नव मय जिनकह एकऊ होई, नारि पुरूष स चराचर कोई
   सोई अतिशय प्रिय भामिनि मोरे, सकल प्रकार भगति दृण तोरे
   (रामचरित मानस अरण्य काण्ड दोहा– 35/36)
3. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश – पृष्ठ– 28 सर्ग तृतीय
4. श्रमणा महाकाव्य – सिंहावलोकन पृष्ठ– 21
5. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश सर्ग 21 वां पृष्ठ 325 छन्द 1 से 3
6. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश पृष्ठ– 29 सर्ग द्वितीय
7. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश पृष्ठ– 211 सर्ग 13 छन्द 3 से 13
8. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश पृष्ठ– 4 से 18
9. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश पृष्ठ– 118 से 263
10. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश पृष्ठ– 10 से 298
11. श्रमणा महाकाव्य – अवधेश सर्ग द्वितीय छन्द 2 से 4
12. श्रमणा महाकाव्य – पृष्ठ 132 सर्ग 21 छन्द 12
13. श्रमणा महाकाव्य – पृष्ठ 21 द्वितीय छन्द 2 से 4
14. रामचरित मानस – बालकाण्ड दोहा– 1/2
15. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग अष्टम पृष्ठ– 135 से 136 छन्द 14, 1, 2
16. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 17 पृष्ठ– 268 छन्द 5 से 7
17. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 18 पृष्ठ– 283 छन्द 13, 14
18. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 21 पृष्ठ– 328 से 329
19. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 21 पृष्ठ– 329 छन्द 9
20. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 21 पृष्ठ– 325 छन्द 3 व 4
21. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 1 पृष्ठ– 10 छन्द 1,2,5, से 7
22. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग पंचम पृष्ठ– 68 छन्द 11 से 14
23. रामचरित मानस – अरण्य काण्ड दोहा– 34–35

24. रामचरित मानस – अरण्य काण्ड दोहा– 35–36

25. श्रमण महाकाव्य – सर्ग तृतीय पृष्ठ– 35 छन्द 14 तथा पृष्ठ 26 छन्द 1 से 5

26. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग प्रथम पृष्ठ– 10 छन्द 3

27. श्रमणा सर्ग – अष्टम पृष्ठ– 135 छन्द और 11

28. श्रमणा सर्ग – 12 वां पृष्ठ– 189 छन्द 3 व 4

29. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग चतुर्थ पृष्ठ– 39 छन्द 2 और 3

30. श्रमणा सर्ग – चतुर्थ पृष्ठ– 63 का पद

अध्याय–2

श्रमणा के रचनाकार श्री अवध किशोर 'अवधेश जी' का व्यक्तित्व, जीवन परिचय, कृतित्व एवं उनका समीक्षात्मक अध्ययन।

जन्म स्थान :

कविवर श्री अवधेश जी बुन्देलखण्ड की पावन वसुंधरा में पुण्य सलिला पुष्पावती (पहूज) नदी के दांए किनारे पर ग्राम पट्टी कुम्हर्रा जो झाँसी कानपुर रोड से बायीं तरफ चिरगाँव से लगभग 5 कि.मी. पश्चिम में है। जहाँ अवधेश जी का जन्म् संवत् 1986 में हुआ था। श्रमणा महाकाव्य के सर्ग पन्द्रह में अवधेश जी ने अपनी जन्मभूमि और जन्म के बारे में लिखा है। उनकी अन्य अनेक कृतियों में भी जीवन परिचय आ चुका है। सरकारी रिकार्ड के अनुसार उनकी जन्म तिथि 1 अक्टूबर सन् 1928 है। इस तिथि में और संवत् वाली तिथि में लगभग 9 माह का अंतर है। किन्तु अंग्रेजी तिथि प्रचलित व सर्वमान्य है। ग्राम पट्टी कुम्हर्रा तहसील मोंठ जिला झाँसी उत्तर प्रदेश में आता है इस स्थान पर पहूज नदी म0प्र0 व उ0प्र0 की सीमा बनाती है अवधेश जी का पूरा नाम अवध किशोर श्रीवास्तव 'अवधेश' है। यह चित्रगुप्त वंशज (कायस्थ) हैं। बुन्देलखण्ड में यह परिवार खरे कायस्थों में गिना जाता है।

माता पिता

पिता स्व. श्री ग्याप्रसाद श्रीवास्तव ग्यारह गाँव के जमींदार ठाकुर मंगलसिंह बुद्धसिंह के यहाँ मुख्यितयार आम थे। माता का नाम श्रीमती कमलकुंवर समथर की थीं। अवधेश जी का जन्म सम्पन्न कायस्थ घराने में

हुआ था। अति महत्वाकांक्षी विचार धारा के होते हुए भी 'सादा जीवन उच्च विचार' ही इनके जीवन का उद्देश्य रहा।

परिवार

माता विदुषी (कमलकुंवर) धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। गीता, रामायण, भागवत, पुराणों आदि का अध्ययन निरंतर चलता रहता था। विदुषी माता और स्वाभिमानी पिता के संस्कार अवधेश जी में पड़े। लगभग 6 वर्ष की आयु में पिता का स्वर्गवास हो गया था और 7वें वर्ष में माता जी का भी हाथ अवधेश जी के सिर से उठ गया। फिर अपने विमाता बड़े भाई बृजनंदन जी ने ही इनका पालन पोषण किया। बाबा का नाम लाला नंदकिशोर था। वे पट्टी कुम्हर्रा ससुराल में आकर रहने लगे थे इसलिए उन्हें लाला कहकर सम्बोधन किया जाता था। अवधेश जी के पिता के तीन विवाह हुए थे पहली माता के पुत्र बृजनंदन थे दूसरी माता के द्वारिका प्रसाद और तीसरी माता के कमल कुंवर अवधेश जी और तीन बड़ी बहनें मिथला, श्यामा, रामा थी। चाचा फुंदनलाल कवि एवं नाटककार थे। बड़े भाई बृजनंदन भी नाटककार थे। उन्होंने कई धार्मिक नाटक लिखे। वे सभी अप्रकाशित है। चाचा फुंदनलाल ने सम्पूर्ण रामायण को नाटक के रूप में परिवर्तित किया था। इसके आधार पर ही सैमरी में राम लीला खेली जाती थी। चाचा फुंदनलाल की मृत्यु कम उम्र में हो गई थी उनकी पत्नि सेंवढ़ा की थी, बहुत दिनों तक जीवित रही बड़ी बहिन मिथला कचनेऊ मऊरानीपुर में दीपचन्द पटवारी को ब्याही थी, जिनकी स्मृति अवधेश जी को नाममात्र की है दूसरी बहिन श्यामादेवी ग्राम सुकेंटा तह0 दतिया (म0प्र0) श्री विष्णुदयाल श्रीवास्तव इन्सपेक्टर (पुलिस) को ब्याहीं थीं, जिनका निवास रिछरा फाटक दतिया में है बहनोई विष्णुदयाल जी पहले स्वर्गवासी हो गए थे बहिन श्यामादेवी भी स्वर्गवासी हो चुकी हैं। बहिन श्यामादेवी मरने के पूर्व ही दतिया के मकान का आधा हिस्सा अवधेश जी को दे चुकी थीं। छोटी

बहिन रामा खड़ौआ तह0 मोंठ श्री गणेशप्रसाद एस.एल.आर. म0प्र0 को ब्याही थीं, रामा भी स्वर्गवासी हो चुकी थीं। बड़े भाई बृजनंदन भी नहीं है, उनकी पुत्री राममूर्ति नदीगाँव में है। मझलें भाई श्री द्वारिकाप्रसाद भी स्वर्गवासी हो चुके हैं। उनकी तीन पुत्रियाँ सुशीला, रामश्री, व राजश्री अपनी ससुराल में है। एक पुत्र कृष्ण बिहारी भाण्डेर में है। अवधेश जी इन सब भाई बहिनों में छोटे थे इनका विवाह 17 जून सन् 1947 को ग्राम ओरेछी जिला जालौन के श्री बालादीन श्रीवास्तव की पुत्री श्रीकुंवर से हुआ। वे सीधी—सादी गृहणी है आते ही उन्होनें गृहस्थी का सम्पूर्ण भार बहुत ही कुशलता एवं मितव्ययता के साथ संभाल लिया था। शिक्षा—दीक्षा अधिक नहीं है, किन्तु वे स्वस्थ सुंदर एवं स्वाभिमानी महिला है। अवधेश जी के दो पुत्र और दो पुत्रियाँ है। बड़े पुत्र दिनेश कुमार, छोटे अशोक कुमार दोनों ही सिंचाई विभाग में कार्यरत है। दिनेश के बाद ऊषा अवधेश जी की बड़ी पुत्री है, जो श्री विशम्भरदयाल श्रीवास्तव, मगरपुर को ब्याही है। वे इस समय एस.आई.सी. इण्टर कॉलेज सीपरी बाजार, झांसी में अध्यापक हैं। दूसरी छोटी पुत्री चन्द्रलेखा उजयान में श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव को ब्याहीं है, जो "राजघाट नहर परियोजना" में कार्यरत हैं और झाँसी में निवास करते हैं। दिनेश की पत्नि नाम श्रीमती मधु और छोटे पुत्र अशोक की पत्नि का नाम श्रीमती महेन्द्रकुमारी (माया) है। दिनेश कुमार के बड़े पुत्र का नाम अपूर्व सिंह है, जो एयर फोर्स में कार्यरत है। छोटी पुत्री दीपा अध्ययनरत है। अशोक की पुत्री अलका बी—एस.सी. व पुत्र मुकुल कुमार इण्टर (साइंस) में है। इस प्रकार अवधेश जी का पूरा परिवार सम्पन्न और सुव्यवस्थित है। इनके सभी पुत्र और पुत्रियाँ साहित्य संगीत और कला में रूचि रखते है। पौत्री अलका एवं पौत्र मुकुल छोटी काव्य रचना भी करते है। इनमें काव्य प्रतिभा अभी से दिखाई पड़ती है। पुत्रवधुएँ साहित्यिक रूचिवति है। उनके नाटक आकाशवाणी से प्रसारित हुए हैं। वे लोक कलाओं में भी दक्षमाने जाते हैं।

शिक्षा–दीक्षा

श्री अवधेश जी के माता–पिता बचपन में ही स्वर्गवासी हो गए थे अतः इनकी शिक्षा–दीक्षा बड़े भाई बृजनंदन की देखरेख में हुई। कक्षा 2 पट्‌टी कुम्हर्रा ग्राम में से ही पास कर ली थी। तीसरी कक्षा तालौड़ की प्राथमिक शाला में हुई। भाई बृजनंदन लड़ावरा में पटवारी थे वहाँ से अवधेश जी चार मील पैदल पढ़ने जाया करते थे। चौथी कक्षा इन्होनें मंझले भाई द्वारिकाप्रसाद के पास रहकर ग्राम गेंदोली दवकाई (कोंच) जिला जालौन में पास की थी। इसी अवधि में अवधेश जी ने पढ़ाई के साथ–साथ खेती बाड़ी का काम भी किया। कक्षा 4 पास करने के बाद कक्षा 5,6,7 बड़े भाई बृजनंदन के पास रहकर मोंठ से पास किया था। प्रति सप्ताह 13–14 मील खाने पीने का सामान लादकर मोठ के स्कूल के बोर्डिंग में रहकर मिडिल कक्षा पास की। उस समय मिडिल कक्षा सातवीं में ही होती थी एवं दूसरी भाषा के रूप में उर्दू पढ़ाई जाती थी। अवधेश जी हिन्दी में प्रारंभ से ही मेधावी थे। वे सदैव कक्षा में हिन्दी के मॉनीटर रहे। 'स्मृति की गोद' में एक घटना वर्णित है। कक्षा 5 की वार्षिक परीक्षा में "पावस" पर निबंध लिखा। जो भाव, भाषा एवं सौन्दर्य पूर्ण था। दो साल बाद यह कक्षा 7 में पहुँचे तो कक्षाध्यापक श्री नारायणदास जी ने कक्षा के प्रथम दिवस ही वह निबंध की कॉपी निकालकर कक्षा में पढकर सुनाई और कहा – " इस बालक के निबंध से मैं इतना प्रभावित हुआ हूँ कि इसे हर कक्षा में पास करता हुआ मिडिल में ले आया"। उन्होंने उसी दिन से अवधेश जी को हिन्दी का मॉनीटर नियुक्त कर दिया। अध्ययन काल में विद्यालय में जो भी सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ करते थे, उन सब में अवधेश जी भाग लिया करते थे। अवधेश जी ने सन् 1946–47 में मिडिल पास कर लिया था। आगे पढ़ने का अवसर ही न था। भाइयों ने नौकरी करने के लिए प्रेरित किया। मंझले भाई द्वारिका प्रसाद जी के यहाँ सिकरी, सिंचाई विभाग में नौकरी के प्रयत्न भी

होने लगे थे। इसी समय अवधेश जी का विवाह भी हो गया था। तमाम संघर्ष के बाद 1 अप्रैल 1948 को सिंचाई विभाग में नौकरी कर ली। नौकरी के दौरान ही प्राइवेट तौर पर अवधेश जी ने हाईस्कूल, इण्टर कर के विशारद साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न, और हिन्दी से एम.ए. बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से किया। अवधेश जी आयुर्वेद अनुसंधान द्वारा रजिस्टर्ड मेडीकल प्रेक्टीसनर भी हैं। इस प्रकार मात्र मिडिल पास के बाद ही नौकरी व शिक्षा–दीक्षा में प्रगति की, साथ ही साथ धर्मशास्त्रों पुराणों, उननिषदों आदि ग्रन्थों का अध्ययन मनन भी चलता रहा। अवधेश जी न केवल हिन्दी साहित्य के पुरोधा है वरन् भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृति, आध्यात्म के मनीषी विद्वान भी हैं। अपने गंभीर चिन्तन मनन से गीता और मानस की मौलिक और मार्मिक व्याख्याएँ करते है।

काव्य प्रतिभा के प्रारंभिक क्षण :

कविवर श्री अवधेश जी ने अपनी कृति "स्मृति की गोद" में इसका विवरण लिखा है। काव्य प्रतिभा इनका वंशानुगत जन्मजात गुण है। बचपन में ही इनमें नाटकीय एवं साहित्यिक गतिविधियाँ दिखाई देने लगी थीं। प्रायः आठ दस वर्ष की आयु से ही यह कीर्तन स्वयं बनाकर गाया करते थे। गायन के साथ–साथ हावभाव भी प्रदर्शित करते थे। मोठ में मिडिल कक्षाओं में पढ़ते समय अवधेश जी नाटकों मे भाग लिया करते थे तथा गाँव की नौटंकी, रामलीला आदि में भी अभिनय किया है। इसके अतिरिक्त अवधेश जी को उनके बड़े भाई एवं पं. नर्मदा प्रसाद से कविता के लिए प्रोत्साहन मिला एवं प्रदत्त विषय पर पहला दोहा लिखा –

" पिकी सुरीली तान से करत खूब गुंजार।
लोगो को मोहित करे बैठे आम की डार।।"

कविता का वृक्ष निरंतर पल्लवित पुष्पित होकर प्रगति करता रहा। नौकरी के सिलसिले में इन्हें झाँसी और मऊरानीपुर में रहना पड़ा। मऊरानीपुर में पं. घासीराम व्यास और घनश्याम दास पाण्डेय की कविताओं का वातावरण मिला और वहीं उन्होंने बृजभाषा के छन्दों की रचना की। घासीराम व्यास के "श्याम संदेश" से प्रभावित होकर अवधेश जी ने "देवकी संदेश" की रचना की, यहीं गीत काव्य के वातावरण का भी सृजन हुआ। प्रेम मण्डल में प्रमुख होने के कारण ढेरों कीर्तन का निर्माण हुआ, जिसमें प्रतियोगात्मक स्पर्धा में पारितोषक प्राप्त हुआ। स्वर और स्वरूप दोंनो ईश्वर ने इन्हें प्रदान किए थे, जिसके कारण कवि सम्मेलनों में अवधेश जी ने अच्छी खासी धाक जमा ली थी। इन्होंने हिन्दी, उर्दू, बृज और बुंदेली में पर्याप्त रचनाएँ की। सन् 1956 में कविन्द्र नाथूराम माहौर के सम्पर्क में आए। इनकी प्रतिभा देखकर उन्होंने अवधेश जी को अधिक प्रोत्साहन दिया। सराफा बाजार झाँसी के कवि सम्मेलन में कवीन्द्र माहौर ने सार्वजनिक घोषणा कर दी थी। "अंजलि" पुस्तक की भूमिका में कवीन्द्र नाथूराम माहौर के भांजे डॉ भगवानदास माहौर के संस्मरण में लिखा कि :–

ग्वारिन गंवारिन ने नैन कजरारिन ते
हेर हेर मोरो कान्ह काये कर दीन्हौ है

कविवर अवधेश जी की ऐसी ही पंक्तियों को आज से 9–10 वर्ष पहले सुनकर कवि गुरू स्व. कवीन्द्र नाथूराम माहौर हर्ष से उछल पड़े थे और भावानिष्ठ होकर उठे थे–"झाँसी की काव्य भूमि में एक नई प्रतिभा, एक नई विभूति का अवतार हो गया है, जो भविष्य में अपने चरमबिंदु पर पहुँचकर साहित्य जगत में एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में जाना जाएगा"। इस प्रकार कविवर अवधेश जी की काव्य प्रतिमा के प्रारंभिक दिनों में, प्रगति के पथ पर बढ़ते गए। जो कवीन्द्र नाथूराम माहौर की भविष्यवाणी को सिद्ध करते हैं।

संघर्ष एवं साधना

संघर्ष ही मानव को ऊँचा उठाने में सहायक होता है, जो व्यक्ति संघर्ष से कतरा गया, वह जीवन से भी कतरा गया माना जाता है। इनका यह गीत है –

" वह जीवन भी क्या जीवन है, जिस जीवन में संघर्ष नहीं"

अवधेश जी का एक आदर्श वाक्य है "संघर्ष ही जीवन है, अकर्मण्यता ही मृत्यु है" बचपन में ही माता–पिता का स्वर्गवास हो जाना ही संघर्ष की भूमिका थी। स्मृति की गोद के लिखे अनुसार "कभी बड़े भाई बृजनंदन और कभी मंझले भाई द्वारिका प्रसाद की बीच झूला झूलते हुए वह निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर होते रहे।" घर गृहस्थी से लेकर खेत खलिहान आदि सभी कार्य अवधेश जी ने किए हैं। प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ने के लिए चार मील प्रतिदिन आना–जाना आठ–दस वर्ष के बालक के लिए श्रम संघर्ष की साधना ही है। कक्षा चार पास होने पर पंडित जी को एक रूप्या भी न दे पाना इनकी विवशता थी। मिडिल की कक्षाओं में प्रति सप्ताह 13–14 मील जाकर आवश्यक भोजन सामग्री ले जाकर विद्या अध्ययन करते रहे, ऐसा क्रम तीन चार वर्ष तक चलता रहा। इनकी विवशता थी कि झाँसी तक का किराया भी इनके पास नहीं थ। यदि बड़े भाई बृजनंदन अधिक सहयोग न देते तो शायद बालक अवधेश आज के अवधेश न होते। इन अनेक संघर्षो के बावजूद अवधेश जी निरन्तर प्रयत्नशील रहे। जन्मजात साहित्य का अंकुर जीवन संघर्ष के साथ–साथ कुंठित नहीं हुआ। इनकी काव्य साधना अबाध गति से चलती रही। बड़े संघर्ष के बाद सरकारी नौकरी में आए तब से कुछ राहत भले ही मिली हो किन्तु इस काल में भी संघर्ष रहा। सर्वे विभाग में होने के कारण अवधेश जी ने अपने नौकरी काल में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में जलाशयो, नहरों और बांधो का सर्वेक्षण कराया और इसमें इनकी जी तोड़

मेहनत हुई किन्तु इनके साहित्यिक जीवन में कोई शिथिलता नहीं आई बल्कि भ्रमणकाल में प्रगाढ़ होती रही। मऊरानीपुर में काव्यमय वातावरण मिला, कविता में उफान आया। अवधेश जी ने "स्मृति की गोद में" में लिखा है कविन्द्र नाथूराम माहौर से मुझे अधिक प्रोत्साहन मिला। दो मुक्तक दृष्टव्य हैं–

जल जल कर हम दहर को देते है रोशनी
मिट जाती जबकि हसती रूहें आफताब की
क्या हो गया जो नाम भूला मेरा बागवाँ

सहित्यकारों एवं लेखकों से सम्पर्क :

कविवर अवधेश जी द्वारा लिखित "स्मृति की गोद" में साहित्यकारों एवं लेखकों के सम्पर्क का सविस्तृत उल्लेख है। अवधेश जी चिरगाँव के निकट रहने वाले है अतः राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के सानिध्य में आना स्वाभाविक था। दैवयोग से 'बुन्देलभारती' पुस्तक गुप्त जी के यहाँ पधारे डॉ. भागीरथ मिश्र, कुलपति सागर के हाथ लग गई और वह विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में प्रमाणित कर दी गई। जब बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तो सागर के पाठ्यक्रम से बुन्देल भारती भी यहाँ आ गई थी इसी प्रकार सागर विश्वविद्यालय में नाटक 'मसूर की करामात' पाठ्यक्रम में रखा गया। "श्रमणा" महाकाव्य पर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में डॉ सुनीता खरे द्वारा पी–एच.डी. उपाधि प्राप्त की गई। सन् 1948 में ये झाँसी आए, उस समय इस क्षेत्र में कवित्रय की प्रसिद्धि थी। कवि घनश्यामदास पाण्डेय, कवि नाथूराम माहौर और घासीराम व्यास से सम्पर्क बढ़ा। कविन्द्र नाथूराम माहौर का वरदहस्त अवधेश जी पर रहा इसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका हैं। उस समय अवधेश जी सम्मेलनों में आमंत्रित किए जाने लगे थे

अतः देश के गणमान्य कवियों से सम्पर्क स्थापित हुआ। ओमप्रकाश आदित्य दिल्ली, देवराज दिनेश दिल्ली, वीरेन्द्र मिश्र दिल्ली, आनन्द मिश्र ग्वालियर, अवस्थी दिल्ली, क्षेमचन्द्र सुमन उज्जैन, माणिक वर्मा हरदा, निर्भय हाथरसी, काका हाथरसी, डॉ आनन्द जालौन, सरोज ग्वालियर, प्रदीप चौबे ग्वालियर, वियोगी हरि छतरपुर, भैयालाल व्यास छतरपुर, वासुदेव गोस्वामी दतिया, रील भोपाल, बेधड़क सागर, बलवीर सिंह ऐटा, शिशुपाल सिंह शिशु, सोम ठाकुर आगरा, रमई काका, काका बैसवाडी, भारत भूषण, ज्ञानवती सक्सैना बरेली, स्नेहलता 'स्नेह' लखनऊ, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, गोपालदास नीरज, बेकल उत्साही, ऋषिकेश चतुर्वेदी आगरा, केदारनाथ अग्रवाल बांदा, गोविंद व्यास, मायागोविंद तपिस, डॉ मृत्युंजय उपाध्याय पटना, प्रभुदयाल विस्मिल, डॉ रामविलास शर्मा आगरा, डॉ हरिशंकर आगरा, सिंदूर कानपुर, शिवानंद मिश्र उरई, डॉ विरही शिवपुरी, बृजेन्द्र अवस्थी आदि ऐसे कवि है, जो अपने समय में राष्ट्रीय स्तर पर विख्यात थे। इनके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड अथवा उ0प्र0 व म0प्र0 के सभी कवि एवं साहित्यकार कविवर अवधेश जी की काव्य प्रतिभा से सुपरिचित हो चुके थे। विद्या निवास मिश्र कुलपति बनारस, डॉ बलभद्र तिवारी सागर, डॉ रामस्वरूप खरे उरई, डॉ. गणेश बुधौलिया, डॉ. श्यामसुन्दर बादल, रामकुमार वर्मा, डॉ. सियारामचरण शर्मा, डॉ. बृजवासी लाल कुलपति, डॉ. एस.डी. त्रिवेदी, डॉ. मलिक कुलपति, डॉ. कल्याण सिंह कुलपति झाँसी, डॉ. हरवंशलाल कुलपति झाँसी, डॉ. हरिहर गोस्वामी दतिया, डॉ. शोभालाल उपाध्याय ग्वालियर, अमेरिकन लेडी जेकी लेबश चेपमेन जिसने झाँसी की रानी पर शोध कार्य किया, अनेक कवियों साहित्यकारों से सम्पर्क हुए, सभी का विवरण देना संभव नहीं है। "स्मृति की गोद" में इसकी पर्याप्त जानकारी दी गई है।

प्रथम कविता :

यह कहा जाना संभव नहीं है कि अवधेश जी की प्रथम रचना कौन सी है। "स्मृति की गोद" में उल्लेख किया गया है कि प्रथम कविता सन् 1939 मे लोकगीत के रूप में सामने आयी जो परिस्थिति जन्य थी। सन् 1939 में ग्राम लड़ावरा की डांग (जंगल) अंग्रेजों द्वारा काटी जाती थी उस समय उन्होंने लिखा है –

सन् उनतालीस में डांग कटी ती
झकरा डरे हजार मोरे लाल"

प्रथम प्रकाशन

कविवर अवधेश जी का साहित्य, जितना प्रकाशित है, उससे कहीं अधिक अप्रकाशित है। सन् 1954 में अवधेश जी की प्रथम कृति "बृज कीर्तन" शीर्षक से प्रकाशित हुई जिस पर लोकगीतों और फिल्मी गीतों की लय पर कीर्तन प्रकाशित हुये थे। हिन्दी के गीतों की प्रथम कृति "अंजलि" सन् 1965 में ललितपुर से प्रकाशित हुई, यह हिन्दी के 40 गीतों का संग्रह है। जिसमें राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, श्रृंगार, वीर, शांत, करूण, अद्‌भुत रसों के गीत समाहित है। जिसकी सारगर्भित भूमिका डॉ. भगवानदास माहौर ने लिखी। उनका कहना हैं – "प्रसाद और माधुर्य तो अवधेश जी के समस्त गीतों में छलकता सा प्रतीत होता हैं।" उनकी सन् 1967 तक की रचनाओं में बृजभाषा के छन्द कवित्त, सवैया, मनहर, रोला, उल्लाला, छप्पय आदि समाविष्ट हैं।

प्रेरणा एवं प्रभाव :

प्रसिद्ध कहावत है– "कवि बनता नहीं वरन् जन्म लेता है' अवधेश जी ऐसे ही जन्मजात कवि हैं। कविता उनके वंशानुक्रम में दृष्टिगोचर होती है। चाचा फुंदनलाल भी कवि एवं नाटककार थे। उन्होंने

सम्पूर्ण रामायण को नाटक के रूप में रंग मंचीयता प्रदान की। बड़े भाई श्री बृजनन्दन भी कवि थे, माता विदुषी एवं धार्मिक महिला थीं, अतः पारिवारिक समस्त गुण अवधेश जी में भी प्रकट हुए। बचपन से ही भाई बृजनन्दन के सानिध्य में रहने में प्रथम प्रेरणा स्त्रोत वही कहे जा सकते हैं। विद्यार्थी जीवन में पंत्र नर्मदाप्रसाद ने कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। झाँसी में आकर इन्हें काव्यात्मक वातावरण मिला और कवीन्द्र नाथूराम माहौर इनके प्रेरणा स्त्रोत बने। उन्होंने अवधेश जी को प्रोत्साहित किया। 'गुण–गुणों को खींचता है' मऊरानीपुर में साहित्यपरक वातावरण था। वहाँ घासीराम व्यास और घनश्याम दास इनके प्रेरणा स्त्रोत रहे।

प्रभाव :

कोई भी व्यक्ति अतीत और वर्तमान के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता चाहे वह किसी भी विधा का हो। व्यक्ति पर वातावरण का प्रभाव तो पड़ता ही है। अन्य महापुरूषों के व्यक्तित्व और कृतित्व का भी प्रभाव उस पर पड़ता है। कविवर अवधेश जी भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। उनके काव्य में आंचलिकता से लेकर उच्चकोटि का काव्य शास्त्रीय प्रभाव परिलक्षित होता है। वीरगाथा काल की रासो काव्य परंपरा के अनुसार वीर काव्य, और भक्ति काल के अनुसार भक्ति काव्य तथा रीति काव्य परम्परा के अनुसार रीति काव्य के दर्शन अवधेश जी के काव्य में होते हैं। वर्तमान साहित्य की प्रत्येक विधा भी उनके काव्य में दिखाई पड़ती है। "अंजलि" की भूमिका में माहौर जी के लेख में यह तथ्य पूर्ण रूप से प्रतिपादित किया गया है कि अवधेश जी के काव्य मे मौलिकता के दर्शन होते है। शबरी महाकाव्य यद्यपि रामचरित प्रधान काव्य है किन्तु इसकी कथाएँ मौलिक रूप में प्रकाशित हुई है। पंत जी के "वियोगी होगा पहला कवि आह से निकला होगा गान" के विचार से अवधेश जी सहमत नहीं है। उनका विचार है, "संयोग होगा पहला कवि वाह से निकला होगा गान।" इस प्रकार देखें तो

अवधेश जी पर गोस्वामी तुलसीदास, दयानन्द सरस्वती, बाल्मीकि और गायत्री के उपासक श्रीराम शर्मा के साथ कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अतुकांत घनाक्षरी का प्रयोग इन्होंने इसी आधार पर किया है। विवेकानंद की भांति सर्वत्र उदात्त स्वरों का बाहुल्य दिखाई पड़ता है। निराशावाद उनके काव्य में बहुत कम दृष्टिगोचर होता हैं। गीतिकाव्य में नीरज, सोम ठाकुर, रंग, रमानाथ अवस्थी का प्रभाव दिखाई पड़ता है। गद्य में भारदतेन्दु हरिशचन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल की शैली का प्रभाव है। यह स्वाभाविक है क्योंकि पूर्ववर्ती और वर्तमान साहित्यकारों से कोई रचनाकार अछूता नहीं रह सकता। चतुष्पदियों (फागों) में "इसुरी" का प्रभाव दिखाई पड़ता हैं। लोकगीत, परम्परागत लोकगीतों का आधार लिए हुए है तथा कुछ सर्वथा नवीन शैली में लिखे गए हैं, इस प्रकार अवधेश जी के काव्य में अतीत और वर्तमान दोनों के दर्शन होते है। उन्होंने जिस विषय पर भी अपनी लेखनी चलाई है उस पर उनके मौलिक व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

काव्य मंच :

लगभग सन् 1955–1956 में अवधेश जी को काव्यमंचो पर ख्याति मिलने लगी थी। स्वर और संगीत दोनों के धनी अवधेश जी देश के ऐसे किसी भी सम्मेलन से वंचित नही रहे, जिसमें उनकी उपस्थिति आवश्यक न रही हो। 'स्मृति की गोद' में के अनुसार राठ में बाल्यावस्था से ही स्पर्धा में अवधेश जी ने अपना सानी बना लिया था। उस क्षेत्र के प्रत्येक कवि सम्मेलन इनकी उपस्थिति अनिवार्य हो गई थी।

इसी प्रकार हरपालपुर बगिया के कवि सम्मेलनों में बराबर 8'10 वर्षो तक इनका जाना होता रहा। झाँसी के प्रत्येक कवि सम्मेलन में यह भाग लेते रहे। लक्ष्मी व्यायाम शाला के कवि सम्मेलन के तो यह कई वर्षो तक संयोजक रहे हैं। झाँसी की कायस्थ समाज द्वारा संचालित डॉ. राजेन्द्र

प्रसाद कायस्थ शाला की इमारत का निर्माण कराने के लिए टिकिट द्वारा कवि सम्मेलन अवधेश जी के संयोजन से ही सम्पन्न हुआ था। अवधेश जी ने विगत 50 वर्षो में कितने कवि सम्मेलनों में भाग लिया संख्या लिख पाना संभव नहीं है। झाँसी की प्रदर्शनी में क्षेत्रीय कवि सम्मेलन की नींव अवधेश जी ने ही डाली थी। इस प्रकार अवधेश जी ने देश के सभी प्रमुख नगरों में अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में भाग लेकर बुन्देखण्ड के अतिरिक्त भोपाल, ग्वालियर, कानपुर, इलाहाबाद, सुल्तानपुर, सागर, विदिशा, जबलपुर, प्रतापगढ़, दिल्ली, हरिद्वार, आगरा नगरों में काव्य मंचो पर स्वर और साहित्य में स्थान बनाया। अवधेश जी मंच के यशस्वी कवि के रूप में अब भी अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं।

उल्लेखनीय संस्मरण :

कालजयी काव्य के धनी कविवर अवधेश जी कविता क्षेत्र में एक लम्बी अवधि से साहित्य जगत से जुड़े रहे है अतः इनके जीवन में संस्मरणों की कमी नहीं हैं। "स्मृति की गोद" नामक कृति में कुछ संस्मरण दृष्टिगोचर होते हैं। शिशुपाल सिंह 'शिशु' प्रसिद्ध कवि थे जिनसे इनका प्रथम परिचय राठ में हुआ था। जब उन्होंने अवधेश जी से व्यंग्य किया तो इसका उत्तर अवधेश जी ने निम्न पंक्तियों में दिया –

आए तुम हो पीकर के मगर हमको पिया समझे,
निकलते सूर्य को अफसोस कि तुम दिया समझे।
जहर उगला है तो बुझ जाएगा सब बेअसर होकर,
जहर मोहरा है अये बेहोश तुम जिसको चिया समझें।
इन शिशुपालो के साथ–साथ परवाह हमे है आन की,
तुम अब न करो मजबूर कहानी कहने को इंसान की।

उस काल में फड़ साहित्य की परम्परा थी। सैर सम्मेलनों में दो पार्टियों में प्रतिस्पर्धा रहती थी। कवि नाथूराम माहौर की पार्टी झाँसी और पाण्डेय जी की पार्टी मऊरानीपुर के बीच राष्ट्रीय विषय पर सैर सम्मेलन का फड़ लगा था। तीन दिन हो गए थे हार जीत का निर्णय नहीं हो पा रहा था। तभी माहौर जी ने अवधेश जी के पास एक व्यक्ति झाँसी भेजकर उनके द्वारा लिखित खण्डकाव्य "मिसफड़म" को सैरों में परिणित करने का कहा। जिसे अवधेश जी ने मात्र दो घण्टे में सैरो मे बदल दिया। यह बिल्कुल नया और अछूता विषय था। जिस पर माहौर मण्डल को विजय प्राप्त हुई।

श्रमणा महाकाव्य के रचना काल में दो सर्ग तक श्रमणा की शैशव पीड़ा कल्पना के आधार पर लिखी जा चुकी थी। आगे राम से जुड़ने का कथा संयोजन विचाराधीन था। कवि को एक रात बारह बजे के लगभग रामायण की अरधाली सुनाई दी –

बिन फर बाण राम तेहि मारा। सतयोजन गा सागर पारा ।।

और आँख खुलने पर सोचा यह चौपाई स्वप्न में क्यों आयी। विश्वामित्र का आश्रम लंका से 2000 कि. मी. दूर था। वहाँ से सतयोजन अर्थात लगभग 800 कि.मी. दूर मारीच को फेंका गया तो वह कहाँ गिरा। सामने भारत का नक्शा लगा था। पैमाना उठाकार नापा तो लंका 2000 मील दूर थी। पैमाना घुमाया तो नासिक पर फिट बैठा, नासिक में ही मारीचका आश्रम था, जो पंचवटी की सीमा में आता था। कल्पना ने उड़ान भरी और कथा चल पड़ी। शबरी का पिता आखेट खेलने गया था और वह मूर्छित मारीच को उठा ले आया। उपचार करने पर मारीच की चेतना जागी और उसने राम के जन्म की सारी कथा श्रमणा को सुना दी। इसी प्रकार श्रमणा महाकाव्य में मतंग ऋषि के आश्रम में स्नातकों की दिनचर्या अत्यंत वक्त की पाबंदी के साथ चलती रहती थी। स्नातकों में एक श्रमणा भी थी,

जो स्त्री थी, जिस दिन यह कथा लिखी गई उसी रात स्वप्न में एक रजस्वला स्त्री के दर्शन हुए और अपनी गलती पर ध्यान आया। प्रातः काल उसमें दो पंक्तियाँ डालकर लिख दिया कि यह प्रतिबंध श्रमणा पर सुविधानुसार था।

विचार एवं दृष्टि :

अवधेश जी के सम्पूर्ण वाङ्गमय का अध्यावसन करना संभव नहीं है फिर भी सिंधावलोकन दृष्टि से उनके सभी पुस्तकों में मौलिक विचार मिल जाते हैं। उनके विचार से काव्य में लोक मानस के भावों का सजीव चित्रण होना आवश्यक है। कवि समाज का मार्गदर्शक होता है, वह परमात्मा का प्रतिनिधि होता है निराकार परमात्मा साकार कवि को प्रेरणा प्रदान कर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का उद्घोष कराता है। कवि का साहित्य समाज के जीवन को सजाता व संवारता हैं। अवधेश जी कविता की कसौटी श्रोता को मानते हैं आलोचक को नहीं। कविता यदि श्रोता को प्रभावित कर उसे रससिक्त कर दे तो वह कविता सार्थक है अन्यथा व्यर्थ है। कविता जीविकोपार्जन का जरिया नहीं है। ऐसा कवि स्वतंत्र विचार व्यक्त नहीं कर सकता हैं, न कटु सत्य कह सकता है। कवि त्रिकालग्य होता है वह अतीत के आदर्श को वर्तमान के संदर्भो में देखकर भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। जिस प्रकार भगवान का स्वाभाव है सृष्टि की रचना करना उसी प्रकार कवि का स्वभाव रचना करना है। कविता लिखी नहीं जाती है वरन् लिख जाती है। शब्द, रस, अलंकार, पिंगल कवि के समक्ष समर्पित होते है। सत्य, शिव और सौन्दर्य ही अवधेश जी की रचनाधर्मिता हैं श्रृंगार वृक्ष है, शांत रस फल फूल है अन्य रस उसके फल और शाखाएँ है। अवधेश जी सामाजिक धरातल पर मानवीय सदाशयता को अनिवार्य मानते है, उनकी रचनाओं में उत्साह संघर्ष की प्रेरणा और कामता सम्मति उपदेश का समावेश है। उनके काव्य में मौलिक उद्भावनाएँ मिलती हैं। वे रूढ़ की

लकीर को मिटाना नहीं चाहते हैं वरन् उसके समानांतर सुधारकर बड़ी लकीर खींचना चाहते हैं। उनका कहना है राजनीति साहित्य के बिना अंधी है। प्राचीन राजाओं के यहाँ सभासदों में कवि और साहित्यकार महत्वपूर्ण पदों पर सम्मान पाते थे। बृज भाषा को वे बुन्देली की साहित्यिक भाषा मानते है उनका मानना है कि बुन्देली लोककाव्य परम्परा और संस्कृति समस्त क्षेत्रीय भाषाओं से प्राचीन हैं।

अवधेश जी की समस्त रचनाएँ स्थानीय रंग, रीति, रिवाज और आंचलिक तत्वों से रंगी हुई हैं। अवधेश जी के काव्य में नए छंद, नए गीत और लोकगीतों का सृजन हुआ है, जिनका पद विन्यास शब्द मैत्री, पदमैत्री और लयात्मकता वे अपनी मानते हैं। वे लयात्मक कविता को ही कविता मानते हैं। अतुकान्त कविता को वे संश्लिष्ट गद्य ही मानते हैं। अवधेश जी का कहना है लोक साहित्य ही प्रांजल साहित्य का जनक है। बुन्देली के राछरे, सूआटा, दिवारी, सावन आदि के गीत राष्ट्रीय चेतना से भरे पड़े हैं। आल्हखण्ड को वे बुन्देलखण्ड का प्रथम महाकाव्य मानते हैं।

अवधेश जी का विचार है कि व्यक्ति और समाज उत्कर्ष की ओर अग्रसर हो आदर्श स्थापित करे। कविता उसकी प्रेरक और मार्गदर्शक बने। कवि अध्ययन और अभ्यास के बल पर दैव्यीय प्रतिभा का सद्प्योग करें। कवि का आदर्श चरित्रवान होना आवश्यक है। अवधेश जी की दृष्टि से नए रचनाकारों को अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है उन्हें सामासिक छन्द विधानों पर ध्यान देना चाहिए। उन्हें अपने वरिष्ठ और प्रबुद्ध कवियों के सानिध्य का लाभ उठाना चाहिए। कविता शब्द को बहुत गंभीरता से लेना चाहिए। आज के 90 प्रतिशत कवि रचना धर्मिता नहीं जानते। पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं को अध्ययन करके अभ्यास करना चाहिए।

महाकवि अवधेश जी के सम्मान, उपाधि एवं पुरस्कार

पुरस्कार : मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार , उ. प्र.
हिन्दी संस्थान सन् 1989
मानस मृगेश संस्थान, भोपाल, 2000
शील्ड, नाट्य लेखन एवं मंचन पर अग्रवाल
समाज, झांसी द्वारा 1994

उपाधि : टी.टी. नगर, आवास विकास सांस्कृतिक समिति झाँसी
द्वारा 'महाकवि, की उपाधि से विभूषित, सन् 1989
नगर पालिका राठ द्वारा नागरिक सम्मान 1960
: नगर पालिका ललितपुर द्वारा नागरिक अभिनन्दन
1965

सम्मान : हैहयवंशीय समिति झाँसी 1980
: नागरिक अभिनन्दन, आयुक्त द्वारा झाँसी 1987
: मानस सम्मेलन समिति दतिया 1991
: शुक्ल साहित्य निकेतन, पृथ्वीपुर 1995
: अभिनव साहित्य परिषद, उरई 1996
: गीता प्रसार समिति, दतिया 1997
: मेला जल विहार समिति, मऊरानीपुर 1997
: उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1997
: संग्रहालाय सुल्तानपुर 1998
: राजा रणजीत सिंह जूदेव, समथर 1999
: सारस्वत हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1999
: बृज साहित्य मण्डल, मथुरा 1999

: संस्कार भारती, झाँसी 2000

: सरस्वती काव्य कला संगम, झाँसी 2000

: कवि चन्द्रशेखर समारोह, दतिया 2000

: सनातन धर्म सभा, दिल्ली 2000

: श्री देवगौडा भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, भारत सरकार द्वारा सम्मान, झाँसी 2001

: श्रीमती सुषमा स्वराज पूर्व सूचना एवं प्रसारण मन्त्री भारत सरकार द्वारा सम्मानित 02.12.2002, झाँसी

: बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी युवा महोत्सव पर श्री विष्णुकांत शास्त्री, राज्यपाल द्वारा सम्मानित 2001

: उत्कर्ष बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा सम्मानित 2001 झाँसी

: अखिल भारतीय कायस्थ महासभा दिल्ली द्वारा सम्मानित
तालकटोरा समारोह, दिल्ली दि. 20.11.2001

: लायन्स क्लब, झाँसी द्वारा सम्मानित दि. 08.10.2002

: सरस्वती काव्य कला संगम द्वारा सम्मानित, नगरा दि. 20.10.2002

: आकाशवाणी छतरपुर द्वारा बुन्देली कार्यक्रम निर्णायक दि. 18.12.2002

: चर्वणा मासिक पत्रिका आगरा द्वारा विस्तृप्त साक्षात्कार दिसम्बर 2002

: स्वदेश पत्र द्वारा सम्मान साक्षात्कार दि. 03.02.2003

: अखिल भारतीय बुन्देलखण्ड साहित्य एवं संस्कृति परिषद, भोपाल द्वारा सास्वत सम्मान दि. 10.06.2005

कृतिया– प्रकाशित कृतिया

: अंजलि (हिन्दी के गीत)

: बृज नन्दन (बृजभाषा के छन्द)

: बुन्देल भारती (बुन्देली के गीत) बु0 वि0 वि0 झांसी व सागर वि0 वि0 में एम0 ए0 पाठ्यक्रम में मान्य

: श्री चित्रगुप्त नाटक (पौराणिक)

: कविता वाला (मुक्तक काव्य)

: नाटिका वाटिका (हिन्दी नाटक संग्रह) (उ.प्र. हिन्दी संस्थान से पुरस्कृत एवं सागर वि0 वि0 में मान्य)

: समय सुहागन (बुन्देली लोकगीत)

: मानस के मर्म (रामचरित मानस पर मौलिक व्याख्यान)

: बुन्देली पंचतंत्र (हिन्दी और बुन्देली कहानी संग्रह)

: श्याम सुधा (आधुनिक कीर्तन)

: श्रमणा शबरी के राम (महाकाव्य)

(श्रमणा महाकाव्य पर पाँच शोध/प्रबन्ध, झांसी

जबलपुर

मणिपुर विश्वविद्यालय से पी0 एच0 डी0 उपाधि प्राप्त)

: श्रीमद् भगवत गीता सिद्धान्त सार का बुन्देली में

भावानुवाद

: झलकारी की झलक (नाटक)

: प्रायश्चित (कैकयी के समक्ष भरत आदि समस्त पात्रो

द्वारा प्रायश्चित मौलिक खण्ड काव्य)

अप्रकाशित

: भरत आगमन (अवधि खण्ड काव्य)

: बुन्देली पंचतंत्र (बुन्देली व हिन्दी कहानियाँ भाग–2)

: बुन्देली कहावत/मुहावरे (संकलन)

: उर्दू नज्में

: स्मृति की गोद में (आत्मकथा)

: मानस के मर्म (प्रवचन भाग–2)

: कलाकार की भूल (उपन्यास)

: बाइबिल का अनुवाद (बुन्देली में)

: आदर्श विवाह (नाटक)

: नारी का मान (नाटक)

: अपने अनुभव (निबन्ध संग्रह)

: कविवर अवधेश जी का रचना संसार

(हिन्दी, उर्दू, बृज बुन्देली की अतिरिक्त रचनाएँ गद्य खण्ड, पद्य खण्ड)

व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध प्रबंध

: कविवर अवधेश व्यक्तित्व और कृतित्व जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) द्वारा शोधार्थी को को पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त

: श्रमणा शबरी के राम महाकाव्य पर झाँसी–जबलपुर मणिपुर विश्वविद्यालय द्वारा शोध विधार्थियों को पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त

: कविवर श्री अवधेश कृत श्रमणा महाकाव्य में "काव्य संस्कृति और दर्शन" विषय बु० वि० वि० द्वारा शोध प्रबन्ध प्रस्तावित

सम्प्रति : संस्थापक एवं संचालक– बुन्देलखण्ड कला मंच संस्थान झाँसी।

: संस्थापक एवं संचालक– "अवधेश पुरस्कार पीठ,झाँसी

अध्यक्ष– बुन्देलखण्ड साहित्य कला संगम, झाँसी

उपाध्यक्ष– बुन्देलखण्ड हिन्दी शोध संस्थान, झाँसी

अध्यक्ष– बुन्देलखण्ड हिन्दी साहित्य परिषद, झांसी

सदस्य– डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद कन्या इण्टर कालेज,झाँसी

संरक्षक– सरस्वती काव्य कला संगम, झाँसी

मंत्री– के0 जी0 द्विवेदी कान्वेण्ट हाई स्कूल, झाँसी

अध्यक्ष– श्रीमती श्यामा देवी स्मृति समिति, रिछरा फाटक, दतिया (म.प्र.)

सन्दर्भ सूची (अध्याय द्वितीय)

1. *श्रमणा (शबरी के राम) महाकाव्य*
2. बुन्देल भारती (बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय, झांसी व सागर विश्वविद्यालय में एम0 ए0 पाठ्यक्रम में मान्य)
3. मानस के मर्म (रामचरित मानस पर मौलिक व्याख्यान)
4. बुन्देली पंचतंत्र (हिन्दी और बुन्देली कहानी संग्रह)
5. स्मृति की गोद में (आत्मकथा)
6. आदर्श विवाह (नाटक)
7. नारी कामन (नाटक)
8. अपने अनुभव (निबन्ध संग्रह)
9. समय सुहागन (बुन्देली लोकगीत)
10. नाटिका वाटिका (हिन्दी नाटक संग्रह)
    (उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, से पुरस्कृत एवं सागर वि0 वि0 में मान्य)
11. स्वदेश पत्र दिनांक 03.02.2003 के स्वदेश पत्र से
12. प्रखर मासिक पत्र, दिल्ली 2002
13. चर्वणा मासिक पत्रिका आगरा– दिसम्बर 2002
14. कलाकार की भूल (उपन्यास)
15. भरत आगमन (अवधि खण्डकाव्य)

अध्याय – तृतीय

राम काव्य परम्परा में श्रमण का स्थान :

भारतीय साहित्य में राम काव्य परम्परा अनादिकाल से अवाध गति से चली आ रही है। वैदिक साहित्य में भी राम का वर्ण ब्रह्मा के रूप में प्रतिपादित किया गया है। पुराणों में राम को विष्णु के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया गया है, शायद ही ऐसा कोई पुराण हो जिसमें रामकथा का संयोजन ना किया गया हो। पद्म पुराण, भविष्य पुराण, विष्णु पुराण, सूर्य पुराण, स्कंद पुराण, धर्म पुराण, महाभारत आदि पुराणों में रामकथा का उल्लेख मिलता है।

1. श्रमणा महाकाव्य में पौराणिकता

वेद जिस ब्रह्मा का वर्णन करते है वही वेद वन्द्य ब्रह्मा मर्यादा पुरूषोत्तम राम के रूप में अवतीर्ण हुऐ है अतः बाल्मीकि रामायण साक्षात वेद ही है ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से आस्था रही है। आदिकाल से आज तक बाल्मीक रामायण की वेद तुल्य प्रतिष्ठा है महर्षि बाल्मीक आदि कवि है, वे विश्व के कवि गुरू है। उनका यह आदिकाव्य बाल्मीक रामायण पृथ्वी का प्रथम काव्य है यह भारत के लिये गौरव की वस्तु है और देश की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है। इसके बारे में कहा गया है :–

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।

एवं 'काव्यबीजं सनातनम्।

अर्थात् बाल्मीक रामायण का एक अक्षर महापातक का नाश करने वाला है एवं समस्त काव्यों का बीज है।

बाल्मीक के बाद व्यास आदि सभी कवियों ने इसी का अध्ययन कर पुराण, महाभारत आदि का निर्माण किया बृहद् धर्म पुराण में यह बात विस्तार से प्रतिपादित है श्री व्यास जी ने अनेक पुराणों में रामायण का महत्व गाया है। बाल्मीकि रामायण का महात्म्य स्कन्द पुराण में विस्तार से गाया गया है। यह भी प्रसिद्ध है कि व्यास जी ने युधिष्ठर के अनुरोध से एक व्याख्या बाल्मीक रामायण पर लिखी थी इसका नाम रामायण तात्पर्य दीपिका है। जिसका उल्लेख दीवान बहादुर राम शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन रामायण' के द्वितीय खण्ड में किया गया है। यह पुस्तर 1944 ई0 में बडौदा से प्रकाशित हुयी थी। अग्नि पुराण के 5 से लेकर 13 तक के अध्यायों में बाल्मीकि के नाम के उल्लेख के साथ रामायण सार का वर्णन है गरूण पुराण में भी रामायण कथा वर्णित की गई। इसी प्रकार हरिवंश विष्णु पर्व में भी यदु वंशीय द्वारा बाल्मीक रामायण के आधार पर ही नाटक खेलने का विवरण है। स्कंद पुराण में भी रामकथा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अलावा मत्स्य पुराण, श्रीमद् भगवद के नवें स्कंद में, कालीदास रचित रघुंवश, भवभूति का उत्तर रामचरित में भी रामकथा का उल्लेख हुआ है।

बाल्मीक रामायण के पश्चात् अनेक रामायणों में रामचरित्र का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, कृतवास रामायण, रामचन्द्रिका, रामचरित चिन्तामणि, रामचन्द्रोदय, कौशल किशोर, साकेत, कैकयी, रावण महाकाव्य, वैदेही वनवास, विदेह, राम की शक्ति पूजा आदि सभी ग्रन्थों में रामकथा को आधार बनाया गया है किन्तु उसके निरूपण में भेद है वह स्वाभाविक है। समय और परिस्थिति के अनुसार काव्य का आधार बदलता रहा है। इन सभी ग्रन्थों में बाल्मीक के पश्चात तुलसी के रामचरित मानस को सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना है। किन्तु विशेषता यह है कि तुलसी और बाल्मीक की रामकथा में बहुत अन्तर है फिर भी निःसंदेह

कहा जा सकता है कि रामकाव्य परम्परा का हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ तुलसी की रामायण ही है आज का सम्पूर्ण हिन्दू जन–जीवन इस ग्रन्थ से अनुप्रेरित है। इसके पश्चात रामचन्द्रिका दूसरा प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में राम के वैभव एवं एश्वर्य का चित्रण अधिक हुआ है। राम की भक्ति, जीवन दर्शन और शीलनिरूपण का चित्रण रामचन्द्रिका में कम ही हुआ है केशवदास जी के बाद नाभादास, अग्रदास, सेनापति, हृदयराम आदि प्रमुख है। नाभादास ने रामभक्ति में सर्मपित काव्य का पूजन किया है। अग्रदास जी ने हितोपदेश, उपरवाणा वावनी रामभक्ति विषय ग्रन्थ लिखा। हृदय रामजी ने हनुमन्न नाटक सेनापति ने कक्ति रत्नाकर रामभक्त सम्बन्धि काव्य का सृजन किया किन्तु इन ग्रन्थो का जनता पर वैसा प्रभाव पड़ा जैसा कि तुलसी के रामचरित मानस का प्रभाव पड़ा।

आधुनिक काल में भी रामभक्ति काव्यधारा का उन्मेष हुआ। रामचरित उपाध्याय ने "रामचरित चिन्तामणि" तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत का सृजन किया इसके पश्चात वर्तमान काल में कविवर अवधेश जी विरचित 'श्रमणा' महाकाव्य (शबरी के राम) के द्वारा रामकथा का युगानुकूल एक नवीन दिशा, नवीन आर्दर्श एवं कथानक को मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त रामायण में राम में जो मानवीयता थी वह भक्तिकाल की भक्ति की आवेशमयी धारा में आलौकिकता से ढक गई उसे अवधेश जी ने आधुनिक युग में पुनः मानवीय संदर्भ प्रदान किये।

बाल्मीकि कृत रामायण बालकाण्ड के प्रारम्भ में बाल्मीक के पूछने पर नारद जी ने रामचरित का वर्णन करते हुये एक स्थान पर श्रमणा का परिचय देते है:–

स चास्य कथयामास शबरी धर्मचारिणीम

श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव

तत्पश्चात् अरण्य काण्ड के तिहेतरवें सर्ग में शबरी के बारे में एक श्लोक प्राप्त होता है :-

तेषां गतानामद्यापि दृश्यतें परिचारिणी।
श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी।।
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम्।
दृष्टा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति।।

इसके पश्चात् *अरण्य काण्ड के 74वें सर्ग में श्रीराम श्रमणा का* सत्कार ग्रहण करते है श्रमणा के कथन के अनुसार ही मतंग वन का भ्रमण करते हुये विदा लेते है श्रमणा दिव्य धाम को प्रस्थान कर जाती है बाल्मीक रामायण में इतना ही वृतान्त है।

इसी प्रकार संक्षिप्त रूप से अध्यात्म रामायण में भी राम और शबरी के मिलन की कथा आती है बृहया वैवर्त पुराण एवं विद्वानों के अनुसार श्रमणा (शबरी) पूर्व जन्म में इन्द्र के यहां अप्सरा थी इन्द्र के कोप के कारण इसे पृथ्वी पर अधम जाति में जन्म लेना पड़ा इसका उल्लेख श्रमणा महाकाव्य के सिंहावलोकन में भी किया गया है तथा एक पद भी दिया गया है। किन्हीं दो विचारकों का कथन है कि पूर्व जन्म में श्रमणा किसी राजा की रानी थी नदी में स्नान करने पर वह रेत में बनी हुयी कुटियों को जलवाकर उसकी अग्नि से शीत दूर किया। मुनियों के श्राप से वह अधम योनि में शबरी (श्रमणा) के रूप में उत्पन्न हुयी, आदि अनेक कथाऐं श्रमाण के बारे मे प्रचलित है। जिससे जनमानस भलीभाँति परचित है रामचरितमानस में तुलसी ने कुछ विषेशता पूर्वक शबरी के बारे में लिखा है राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते है। सन्यासिनी, बैरागनी और अविवाहिता शबरी को अनेक बार भामिनी शब्द से सम्बोधित करते है राम सीता की खोज के बारे मे पूछते है, शबरी उन्हें किष्किन्धा में जाकर सुग्रीव से मित्रता करने को कहती है और यह भी बतलाती है कि सुग्रीव सीता की

खोज अवश्य करा देगें। मुख्यतः यह तुलसीकृत रामायण ही श्रमणा महाकाव्य का निमित्त कारण है।

इसके साथ ही श्रमणा महाकाव्य में अन्य कथाऐं भी आई है, उनका भी आधार पुराणों के साथ–साथ मुख्यतः बाल्मीक रामायण और रामचरित मानस ही है, उनका विशलेषण इसी अध्याय के द्वितीय वर्ग (मौलिकता) में हुआ है।

2. श्रमणा महाकाव्य में मौलिकता

श्रमणा महाकाव्य में सर्वत्र मौलिकता के दर्शन होते है रामायण में आई हुयी प्रत्येक संदर्भित कथाओं को मौलिक एवं मानवीय परिपेक्ष में प्रस्तुत किया गया है। श्रमणा (शबरी) के जन्म की कथा का उल्लेख कहीं पर प्राप्त नहीं होता केवल यौवन में विवाह के पूर्व ही वह पशु पक्षियों की हिंसा के भय से घर त्याग कर चली गई। वन मे मतंग ऋषि के आश्रम में छिप–छिप कर सेवा करती रही। एक दिन मतंग ऋषि ने उसे यह कार्य करते हुये देख लिया तथा उपयुक्त पात्र समझकर उसे अपनी शिष्या बना लिया। इस पर वन के ऋषियों ने मतंग और शबरी को दोषी ठहराकर बुरा–भला कहा। जिसके कारण पम्पा सरोबर का जल दुर्गन्धित हो गया। शबरी के आचमन करने से वह जल पुनः शुद्ध हो गया। मतंग ऋषि ने स्वर्ग लोक जाते समय श्रमणा को बताया कि राम और लक्ष्मण इस वन में आयेगे और उनके चरण स्पर्श करने से तुम्हारा उद्धार हो जायेगा अब तक के सम्पूर्ण साहित्य मे शबरी की इतनी ही कथा मिलती है जन्म का कहीं कोई वृतान्त प्राप्त नहीं है ।

श्रमणा महाकाव्य में 'श्रमणा' महाकाव्य की नायिका है, इसलिये उसका जन्म एवं बाल्यक्रीड़ा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। अहिंसा का प्रतिपादन करते हुये एक आख्यांन बड़े सुन्दर ढंग से दिया गया है।

हिरण के बच्चें के माध्यम से श्रमणा के द्वारा हिंसक प्रथा के विरूद्व अहिंसा का उपदेश दिया गया है शबरी के पिता ने इसके उपदेश से ही अहिंसा का व्रत स्वीकार करके अपने राज्य में प्राणियों को मारने का प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी बीच मूर्च्छित मारीच को पिता द्वारा अपने यहां लाया जाता है, वह अपने को लंका का गुप्तचर बतलाता है। इस माध्यम से श्रमणा को राम का सम्पूर्ण वृतान्त मारीच के द्वारा ज्ञात हो जाता है। मारीच देवासुर संग्राम का विस्तार पूर्वक वर्णन करता है और दशरथ द्वारा कैकयी को दिये गये वरदानों के कारण राम का वन आना सुनिश्चित करता है इस प्रकार देवासुर संग्राम का विस्तार पूर्वक वर्णन सर्वथा मौलिक रूप से आ गया है।

अहिल्या की कथा

श्रमणा महाकाव्य में सर्वत्र मौलिकता के दर्शन होते है रामायण में यह कथा आई है किन्तु श्रमणा महाकाव्य में नवीन परिवेश में यह कथा संयोजित की गई। पौराणिक कथा में अहिल्या को पतिलोक अर्थात् स्वर्ग लोक जाना दिखाया गया है किन्तु राम के द्वारा समझाने बुझाने पर गौतम ने अहिल्या को स्वीकार कर लिया यही मौलिकता है इसके अलावा राम ने अपने तर्को द्वारा गौतम को भी दोषी सिद्ध किया। यह भी नवीनता है।

सती और शिव द्वारा श्रमणा को विवाह का उपदेश देना

यह कथा कवि के द्वारा मौलिक कल्पना के साथ प्रस्तुत हुयी है जिसके द्वारा विवाह की महत्ता और उसका औचित्य बतलाया गया है।

निषाद पुत्र और श्रमणा की भेंट

यह भी कवि की मौलिक उद्‌भावना है कि जिसके द्वारा विवाह की सम्पूर्ण तैयारियां की गई बरात के भोजन के लिये प्रकोष्ठ में बन्द पशु पक्षियों को श्रमणा मुक्त कर देती है और उन्हीं के द्वारा वह वन को चली

जाती है। पुराणों मे वर आदि का कोई उल्लेख नहीं है केवल पशु पक्षियों को मुक्त करने की बात कहीं गई है।

दक्षिण वासियों का श्रमणा से मिलना

यह सर्वथा मौलिक उद्भावना है कि रावण से आतंकित होकर जन सामान्यवासी उत्तर की ओर भागते है। श्रमणा उनको आश्वस्त करके उनको अयोध्या भेजकर राम को वन में लाने का उपक्रम तैयार करती है।

कैकयी और राम का सम्बाद

अन्य कथाओं में राम को वन भेजने का दोष कैकयी पर ही आरोपित किया गया है किन्तु इस महाकाव्य में कैकयी को सवर्था निर्दोष सिद्ध करते हुये राम ही कैकयी को बाध्य करते है कि वह दो वरदान मांग कर लोक कल्याण हेतु मुझे वन भेजने के लिये पिता को विवश करें। यह वृतान्त इतने औचित्य पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि पाठक और श्रोता को सत्य का आभास हो जाता है। यह कथा कवि की गहरी सूझ–बूझ और मौलिक कल्पना का सर्वोत्तकृष्ट उदाहरण है।

विश्वामित्र और श्रमणा की भेंट

विश्वामित्र और श्रमणा की भेंट भी कवि की मौलिक सूझ है। इस आख्यांन में विश्वामित्र ने श्रमणा को राम का परिचय दिया। मोह परित्याग का उपदेश एवं गायत्री की उत्पत्ति तथा महिमा का वर्णन किया है इस माध्यम से सृष्टि निर्माण की कथा वर्ण धर्म की महत्ता बतलाई गई है।

श्रमणा और जटायु की भेंट

यह भी कवि की मौलिक उद्भावना है। इस माध्यम से दशरथ और शनि के युद्ध की कथा एवं दशरथ से मित्रता की बात बतलाई गई है

निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है। चित्रकूट में भरत मिलाप के साथ–साथ सीता और सुनैना आदि का बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। सम्भवतः चित्रकूट के इस प्रसंग को प्रस्तुत करने के लिये यह कल्पना की गई है।

श्रमणा का किष्किन्धा में प्रवेश

जटायु के द्वारा श्रमणा को यह ज्ञात होता है कि मानवों की ओर से राम ने रावण वध का संकल्प लिया है उनके सहयोग के लिये वानरों की भी आवश्यकता है। इसलिये श्रमणा किष्किन्धा पहुँचती है। वहां बालि को मयदानव के पीछे जाकर ना लौटने की स्थिति में जनमत के द्वारा सुग्रीव को किष्किन्धिा का राजा बनाने की घोषणा करती है। उसी समय समस्त वानरों को रावण वध अभियान में राम का सहयोग देने के लिये प्रोत्साहित करती है यह कथा भी नितांत मौलिक है।

सूर्पनखा व श्रमणा की भेंट

यह कवि की मौलिक उद्भावना है। इस माध्यम से श्रमणा सूर्पनखा को अपने विश्वास में लेकर लंका की समस्त गतिविधियों की जानकारी लेती है। रावण, कुम्भकरण, विभीषण, त्रिजटा आदि का परिचय ज्ञान–विज्ञान, सैन्य शक्ति आदि की जानकारी प्राप्त करती है।

श्रमणा का मतंग आश्रम में प्रवेश

श्रमणा महाकाव्य के 13,14, व 15 वें सर्ग में श्रमणा और मतंग का आख्यांन विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। श्रमणा को मतंग ऋषि द्वारा दीक्षा देने पर अन्य मुनियों को रोष व्यक्त करने पर मतंग ऋषि का उनकी

सम्पूर्ण शंकाओं का समाधान किया गया है। इसी प्रसंग में मतंग ऋषि वेदवति और सीता की उत्पत्ति बतलाकर उसे जुड़वा बहिन बतलाते है तथा संकट पड़ने से सीता को वेदवति से बदलने की बात बतलाते है सारी योजना बतलाकर मतंग ऋषि देह त्याग देते है। यहां मौलिकता है कि बाल्मीक के अनुसार वेदवति ने देह त्यागकर सीता के रूप में जन्म लिया है किन्तु कवि ने अपनी मौलिक उद्भावना के साथ सीता को बदलने की बात कहीं गई है जिसके प्रमाण में त्रिपति वेंकटेंश्वर की जीवन कथा का संदर्भ दिया है।

श्रमणा के आश्रम पर रावण का आगमन

रावण भ्रमण करता हुआ श्रमणा के आश्रम में प्रवेश करता है किन्तु श्रमणा के तेज से वह आश्रम में प्रवेश नहीं कर पाता है। इस कारण पूछने पर श्रमणा आध्यात्मिक योग का प्रभाव बतलाते हुये उसकी विवेचना करती है। भौतिक विज्ञान की महत्ता बताकर केवल आध्यात्म द्वारा ही शान्ति प्राप्त करने का उपदेश देती है। यह भी मौलिक उद्भावना है।

मारीच का पांच बनावटी साधुओ को सचेत करना

मारीच जब राम की कुटिया की ओर जाता है, तो पांच बनावटी साधु अपने बीते हुये कुकृत्यों की चर्चा करते हुये राम की भांति अपने साथ स्त्री रखने की योजना बनाते है मारीच राम की समर्थता का वर्णन करते हुये वन में अपने साथ स्त्री रखकर उसकी सुरक्षा करना संभव नहीं है, कहकर उन्हें पत्थर की स्त्री निर्माण करने से रोकते है। बनावटी साधु भयभीत होकर भागते है। यह कवि की मौलिक उद्भावना है जिसका आधार कवितावली है।

मारीच की श्रमणा से पुनः भेंट

नकली साधुओं से मिलकर मारीच राम की कुटिया की ओर जाता है रास्ते में श्रमणा से पुनः भेट हो जाती है। वह श्रमणा को रावण के द्वारा सीता हरण की योजना बतलाते हुये अपने द्वारा स्वर्ण मृग बनकर राम को छल से हटाने का रहस्य बतलाता है। यह सुनकर श्रमणा का अन्र्तद्वन्द बढ़ जाता है और वह मारीच को विदा करके अग्नि ऋषि के यहां जाकर वेदवती को सीता से बदलने की योजना बनाती है। यह मौलिक उद्भावना अगली घटना के लिये पृष्ठ भूमि का काम करती है।

अग्नि ऋषि के द्वारा सीता को वेदवती से बदलना

यह कथा सवर्था मौलिक है अग्नि ऋषि राम, सीता और वेदवती चारों मिलकर सीता को कुटियां से हटाने की योजना बनाते है। सीता इसके लिये तैयार नहीं होती है किन्तु अग्नि ऋषि के समझाने से और राम के अकाट्य तर्को से विवश होकर सीता अग्नि ऋषि के साथ चली जाती और वेदवती सीता के स्थान पर कुटियां में रह जाती है।

श्रमणा और शंकर जी की भेंट

सती के द्वारा राम से छल पूर्ण व्यवहार करने पर शंकर जी को दुख होता है, वे सती का परित्याग करके भ्रमण करते हुये श्रमणा के आश्रम में पहुँच जाते है। श्रमणा उनके दुख का कारण पूछती है, शंकर सती का वृतान्त बतलाते हुये सीता हरण की बात कहते है। शंकर कर्म और ईश्वर इच्छा की मीमांसा करते हुये दो नारदीय आख्यांन का दृष्टांत देकर कर्मफल की प्राप्ति का भेद बतलाते है। श्रमणा पूछती है अनाचारी रावण शक्ति और वैभव सम्पन्न क्यों है ?

शंकर उसका समाधान करते है। राम इस ओर आ रहे है यह बतलाकर विदा होकर चले जाते है। इस कथानक में केवल सती वियोग का संदर्भ रामचरित मानस से लिया गया है। यह कथा मौलिक कल्पना है।

श्रमणा और राम का मिलन

अन्य रामायणों में श्रमणा और राम का मिलन वर्णन संक्षिप्त रूप से मिलता है। राचरितमानस में राम के आगमन पर श्रमणा (शबरी) फल मूल अर्पण करती है। राम उसे नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं। सीता की खोज के बारे में पूंछते हैं, श्रमणा किष्किन्धा जाकर सुग्रीव से मित्रता करने के लिये कहती है और सारा वृतान्त राम को सुनाती है। इसके पश्चात राम विदा लेकर आगे चले जाते हैं। शबरी अपना शरीर त्याग देती हैं। इतनी कथा तुलसीदास ने लिखी हैं किन्तु श्रमणा महाकाव्य में यह कथा विस्तार से कही गयी है। श्रमणा प्रतीक्षा करते–करते मूर्छित हो जाती है। शुक्र–सारिका द्वारा राम को सारा वृतान्त ज्ञात होता है। वे मूर्छित श्रमणा को कमण्डल के जल को छिड़क कर सचेत करते हैं। श्रमणा किष्किन्धा और लंका का सारा वृतान्त राम को बतलाती है जो उसे सूर्पनखा आदि से ज्ञात हुआ था। तुलसी ने जो सब कथा एवं कहि कथा सकल का संकेत दिया है, उसको यहां वह सारा वृतान्त विस्तार से बतलाती है जिसके कारण राम को लंका की सारी स्थिति ज्ञात होती हैं। इसके साथ ही वह अपना जन्म से लेकर अब तक का सारा वृतान्त सुनाती है और कहती हैं कि आपसे मिलने के लिये मैंने अपना गृह त्यागा है और अब तक इसीलिये आप की प्रतीक्षा में रही कि आपको सम्पूर्ण जानकारी देकर गुरूजी के बतलायें हुयें कर्तव्य का पालन कर सकूं और आपका सानिध्य प्राप्त करूं। राम बहुत ही विनम्र शब्दों में श्रमणा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते है।

श्रमणा राम का कथन सुनकर अत्यन्त व्याकुल होकर चरणों में लिपट जाती है। राम उेस सान्त्वना देते हैं। वह आनन्द मग्न होकर चरणों में लिपट जाती है। वह आनन्द मग्न होकर नृत्य करने लगती हैं। राम भी उसके नृत्य में सुध–बुध खो बैठते हैं। लक्ष्मण यह सारा दृश्य देखकर आश्चर्य चकित हो जाते हैं। स्वाभाविक स्थिति में आ जाने के पश्चात् राम कुछ खाने के लिये मांगते हैं। तीन दिन से कुटिया से बाहर न निकलने के कारण उसके पास खाने के लियें कुछ नहीं था। वह सूखे बेरों का दोंना राम को देती है। जब राम और मांगते हैं तो श्रमणा (शबरी) असमर्थता व्यक्त करती है। राम को अधखाये बेरों का दोंना दिखायी पड़ता हैं। वे उसे शीघ्रता से उठाकर खाने लगते हैं। श्रमणा (शबरी) व्याकुल होकर कहती हैं, यह मेरे जूठे बेर हैं और दोंना छीन लेती है फिर भी एक दो बेर राम खा लेते हैं। यहां कवि ने उस जनश्रुति को सम्भाला है जिसमें जानबूझ कर जूठें बेर खिलाने की बात कही जाती हैं। राम ने अचानक ही वह बेर खा लिया था। इस तथ्य का निर्वाह कवि ने बहुत चमत्कार पूर्ण ढंग से किया हैं। अन्त में राम प्रेम की महिमा बतलाते हुये मोह नष्ट करने का उपदेश श्रमणा को देते हैं। वह अर्न्तमुखी हो जाती है और उसका मोह राम के प्रति तिरोहित हो जाता है। राम जटायु का वृतान्त सुनाते और हैं और एक रात्रि का विश्राम करते हैं। प्रातः श्रमणा को परम ज्ञान देकर विदा लेते हैं। यह सम्पूर्ण कथानक सर्वथा मौलिक रूप से प्रस्तुत हुआ है जो अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

अपने हित को त्याग जगत हित ही अभिधेय तुम्हें है,
सीता की मर्यादा की रक्षा का श्रेय तुम्हें है।
हे सुभगे मैं राम वन्दना कैसे करूं तुम्हारी,
मैं ही क्या सब आयै जाति है लोक तीन आभारी।
दे जीवन सर्वस्व लोकहित, आज परम पद पाया,
राम अकिंचन को तुमने जगव्यापी राम बनाया।

इतना कह रूक गये राम रोमांच अधिक हो आया,

शेष रह गया था वह नयनों की भाषा में गाया।

श्रमणा और बाल्मीक का मिलन

अन्तिम सर्ग इक्कीसवें में ऋविर बाल्मीक श्रमणा के आश्रम में आते हैं और श्रमणा की जिज्ञासा के अनुसार राम के अगले चरित्र के बारे में सारा बतलाते हैं। बाल्मीक सीता परित्याग की बात शम्भूक वध, लक्ष्मण का त्याग आदि की कथा कहते हैं। श्रमणा की वन्दना करते हुये बाल्मीक आशीर्वाद देकर विदा लेते हैं। वन के सम्पूर्ण ऋषि मुनि श्रमणा की वन्दना करते हुये उसे भक्ति का अवतार मान लेते हैं। श्रमणा कुटिया के द्वार बन्द कर लेती हैं। यहीं पर महाकाव्य की समाप्ति है। दृष्टव्य है कि यहाँ पर तुलसी की भाँति श्रमणा का देह त्याग कवि ने नहीं दिखलाया है क्योंकि विचारकों को अनुसार महाकाव्य की नायिका की मृत्यु दिखाना वर्जित हैं। कवि ने इसी को ध्यान में रखकर केवल कुटियां के पट बन्द करने की बात कही है।

ली महर्षि ने विदा, आश्रम पथ पर चरण दिये थे,

श्रमणा ने कुटिया के अर्न्तपट युग वन्द किये थे।

इस प्रकार यह अन्तिम स्थिति सर्वथा मौलिक स्वरूप में प्रस्तुत की गई है।

निष्कर्ष

श्रमणा महाकाव्य में अन्य ग्रन्थों का नैमित्तक आधार लेते हुये पूर्ण रूपेण मौलिक अभिव्यकितयों, उद्‌भावनाओं का समावेश हुआ हैं। कवि ने श्रमणा महाकाव्य में मौलिकताओं की मणियों को कथा सूत्र में इतने सुन्दर और आकर्षक युक्ति–युक्त ढंग से पिरोया है कि कोई भी वाद विवाद की धूलि इन्हें धूमिल नहीं कर सकती। किसी भी प्रकार की तर्क की कैची उन्हें

काट नहीं सकती। यही कारण है कि अनेक विचारकों ने इस महाकाव्य को अत्यन्त उत्कृष्ट और अनूठा कहा है।

3. श्रमणा महाकाव्य का प्रयोजन

वाह्य साक्ष्या के आधार पर–

काव्य मनीषियों ने काव्य प्रयोजन पर अपने विस्तृत रूप से विचार व्यवत्त किये है। आचार्य मम्म्ट का प्रसिद्ध श्लोक है –

" काव्यं यश सेश्रर्यकृते व्यहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिर्वृतये कान्ता सम्मिततयोपदेशयुते।"

इस श्लोक के अनुसार काव्य के छह प्रयोजन कहे गये है।1. यश प्राप्ति 2. धन प्राप्ति, 3. व्यवहार का ज्ञान, 4. अमंगल से रक्षा, 5. आनन्द प्राप्ति, 6. कान्तोपदेश। इनके अतिरिक्त विचारकों ने और भी प्रयोजन लिखे है जैसे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति, सरस उपदेश, सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध, कर्म प्रवृत्ति इनमें अलौकिक आनन्द की प्राप्ति और कान्तोपदेश ही है। इन दोनों के अन्तर्गत ही शेष का समावेश हो जाता है अर्थात रागात्मिका प्रवृति को बढ़ाकर मनुष्य में मनुष्यता का विकाश करना, काव्य का परम उददेश्य है।

श्रमणा महाकाव्य के गम्भीर अध्ययन से ज्ञात होता हैं कि उपरोक्त सभी प्रयोजन इसमें पूर्ण हुये हैं इनके अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों का भी समावेश हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते है :–

कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई।

भनिति अर्थात् कविता वही अच्छी हैं जिसमें देवनदी गंगा की भांति सब का भला करती हो अर्थात् लोक और परलोक दोनों के लिये हितकर हो। श्रमणा महाकाव्य का आधार रामचरित मानस ही है अतः तुलसी के इस

मनतव्य का कवि ने विशेष ध्यान रखकर उसकी रचना की है। विद्वान विचारक सुधाकर शुक्ल ने श्रमणा के बारे में लिखा है – "मैं वर्तमान सन्दर्भ में एक बहुत बड़ी आवश्यकता पूर्ति के रूप में इस महाकाव्य को मानता हूँ।" सिंहावलोकन में कवि ने अपना प्रयोजन व्यक्त करते हुये लिखा है। पूर्वजों, आदर्श पुरूषों का आदर्श चरित्र जब तक आचरण में नहीं आयेगा तब तक सुख शान्ति आनन्द की कल्पना आकाश कुसुम ही रहेगी। जिन लोगों ने इसे आचरण में उतारा हैं उन्हें आनन्द की प्राप्ति हुयी है। सद् ज्ञान का आचरण में आना ही चरित्र है। आदर्श को सामने रखकर उसे अपने कर्तव्य पर आरूढ़ होना है। असत्य से सत्य की ओर, तम से ज्योति की ओर बढ़ना है, उसे अपने अखण्ड ज्योतिर्मय अंशी से मिलना है, तभी उसका संसार में मानव जन्म लेना सार्थक होगा और वह सम्भव होगा मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के मानव चरित्र को अपने आचरण में लाने से अतीत को वर्तमान के सन्दर्भ में प्रस्तुत करना, देवत्व को मानवीय परिप्रेक्ष्य में दिग्दर्शन कराना ही श्रमणा का मुख्य उद्देश्य है। जिस प्रकार तुलसी ने राम के ईश्वर पक्ष को अधिक उभारा है उसी प्रकार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मेरा लक्ष्य उनके मानवीय पक्ष को उभारने का है।

राम को भगवान मानकर बहुत कुछ लिखा जा चुका था। अब उनका चरित्र मानव की कसौटी पर कसने की भी तो आवश्यकता थी। इन्ही मूल धारणाओं ने इस महाकाव्य को जन्म दिया। इस प्रकार बाह्य साक्ष्य के आधार पर उपरोक्त प्रयोजन का उल्लेख किया गया है।

श्रमणा महाकाव्य का प्रयोजन अन्त साक्ष्य के आधार पर

श्रमणा महाकाव्य के तृतीय सर्ग के अन्त में एक दोहा दिया गया है

भक्ति ज्ञान और कर्म की, तुलसी कृत आगरा
कर्म भक्ति और ज्ञान है, श्रमणा का आधार।

इस दोहे में तुलसी कृत रामचरित्र मानस का सन्दर्भ देते हुये कहा गया है कि उसमें भक्ति ज्ञान और कर्म की धारा प्रवाहित की गयी है जिसमें भक्ति को प्रथम स्थान पर और ज्ञान को द्वितीय स्थान पर तथा कर्म को तीसरे स्थान पर रखा गया है। किन्तु श्रमणा में कर्म को प्रधानता दी गई है। दूसरे स्थान पर भक्ति और तीसरे स्थान पर ज्ञान हैं अर्थात् कर्म के द्वारा भक्ति और ज्ञान सुलभ हो सकता हैं। महाकाव्य में कवि ने ऐसा ही क्रम रखा है ।

चतुर्थ सर्ग के अन्त में अपना उद्‌देश्य बतलाते हुये कवि ने लिखा है –

मम उर से उत्पन्न कथा यह विश्व तोषिता होगी,
तुलसी की वर राम कथा की पुण्य पोषिता होगी।
सद विवेक निश्छल उर के सब संशय समन करेगी,
श्रद्धा सहित पठन पाठन से मंगल मोद करेगी,
जय शबरी के राम तुम्हारी कथा केतु है श्रमणा।
दलित उपेक्षित निर्बल जन के हेतु सेतु है श्रमणा।
अन्धकार में लुप्त जव, हो जाता इतिहास,
तब कवि कर वर कल्पना, देते दिव्य प्रकाश।

श्रमणा कथा की उददे्श्य संसार को सन्तोष और तुलसी की रामकथा का पवित्र पोषण है। श्रमणा कथा शुद्ध विवेक शील और निष्कपट हृदय के संशयों का निराकरण करने वाली होने का संकेत तथा श्रद्धा पूर्वक अध्ययन और मनन से मोद और मंगलकारी का सन्देश है। दोहे में कवि का कथन है कि जब पुरातन इतिहास अंधकार मय हो जाता है तो कवि अपनी श्रेष्ठ

कल्पना से उसको प्रकाश देते हैं। इस प्रकार श्रमणा कथा का दूसरे पौराणिक इतिहास पर प्रकाश डालना भी कवि का उददेश्य है।

पंचम सर्ग के अन्त में एक दोहा दिया गया है –

उठी तर्जनी अन्य पर, तीन उठीं निज ओर,
कहतीं तुममें भरे हैं, उससे तिगुने खोर।

इस दोहे से स्पष्ट होता है कि कवि चाहता है कि लोग दूसरो के दोष न देखकर अपने ही दोषों पर विचार करें। कवि का उद्देश्य उसका उचित दर्शन कराना है। दूसरे दोहे में कवि का कहना है–

भारत संस्कृति में निहित, सर्व हितैषी इष्ट
अर्थ अनर्थ किया गया, हुये इसलिये भ्रष्ट
श्रमणा मानस में अहैं, सामंजस्य विवेक,
लेखन हारे दो रहे, बोलन होरे एक।

श्रमणा महाकाव्य के द्वारा रामायण और श्रमणा महाकाव्य में विवेक पूर्वक सामंजस्य स्थापित करना भीं है। सप्तम सर्ग में उपरोक्त तथ्यो को स्पष्ट किया गया है–

किन्तु आज के सन्दर्भो में, मूल्य किसी ने आंका,
उस अतीत के गुरू गवाक्ष से, वर्तमान को झांका।
यह ऐसा होता कि कथा यह, आत्मसात कर लेते,
तो यह बदले मूल्य आज के, किंचित कष्ट न देते।
आओ मेरे नयनों से, देखो पौराणिक गाथा,
श्रमणा के चरणो में श्रद्धा सहित नवाओं माथा।
अब आगे की कथा यथामति सहित विवेक कहेंगे,
होगे सदा सफल जीवन जो श्रद्धा सहित पढ़ेगे।

वर अतीत आदर्श को, वर्तमान के हेतु
प्रस्तुत करते श्रेष्ठ कवि, भवसागर को सेतु।

कवि का कथन है भारतीय संस्कृति केवल पौराणिक कथा बनकर रह गयी है यदि उसे वर्तमान सन्दर्भो में समाहित करके देखा जाय और उस पर आचरण किये जायें तो निश्चित ही हमारे समाज की स्थिति इतनी कष्ट मय न होती। कवि का स्पष्ट कथन है कि मेरे दृष्टिकोण से उन पौराणिक गाथाओं को समझकर आचरण में लाया जाये तो मानव जीवन सफल हो सकता है। इस श्रमणा महाकाव्य में अतीत के आदर्श को वर्तमान के हेतु यथार्थ बनाकर प्रस्तुत किया गया है जो संसार सागर के लिये पुल का काम करेगी। अष्टम सर्ग के अन्तिम छंदो से भी श्रमणा महाकाव्य के प्रयोजन पर प्रकाश पढ़ता है–

पूर्वाद्ध तुलसी है यदि तो, यह उसका उत्तर है,
है यह प्रश्न चिन्ह तो उसका, तुलसी ही उत्तर है।
जब सछिद्र सदग्रन्थ हो, अति पाखण्ड विवाद,
तब श्रमणा मे ढूंढिये, प्रिय उनका परिवाद।
मनसा वाचा कर्मणा, होती परम पवित्र
प्रेम सहित जो गायगा, श्रमणा राम चरित्र

तुलसी की रामचरित मानस राम चरित्र का यदि पूर्व का आधा भाग है तो श्रमणा महाकाव्य पश्चात् का शेष भाग है। तुलसी में यदि कोई प्रश्न चिन्ह शंकायें अथवा जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं तो श्रमणा महाकाव्य में उसके समाधान मिलेंगे और श्रमणा महाकाव्य में यदि कोई शंकाये उत्पन्न होती है तो उसके उत्तर एवम् समाधान तुलसीकृत रामचरित मानस में मिलेगें। इसमें कवि कहना चाहता है कि यह दोनो ग्रन्थ एक दूसरे के पूरक है। प्रथम दोहे के माध्यम से कवि का प्रयोजन है कि जब सदग्रन्थो में दोष अथवा त्रुटिया या विवाद उत्पन्न हो उसका पिरवाद व निर्णय श्रमणा में

मिल जायेगा। द्वितीय दोहे में मन, वचन और कर्म से पवित्र होने का सन्देश श्रमणा महाकाव्य के द्वारा दिया गया है।

नवम् सर्ग के अन्त में शूद्रो की हेयता पर तर्क संगत विवेचना देते हुये कवि ने कहा है –

श्रेष्ठ वंश मान्यता दैव कृति नही, मनुज की कृति है,
इसलिये यह नियम त्याज्य है, यह मेरी सम्मति है।
परम्परायें यदि न समय अनुकूल स्वयं बदलेंगे,
तो परिवर्तन शील विश्व में, हम कैसे रह लेंगे।
परिवर्तन ही तो उन्नति का माध्यम कहलाता है,
अधम कीट भी तो संगति से भँवरा वन जाता है।

इस विषय में प्रथम सर्ग में भी कवि ने शूद्रो के पक्ष में तर्क संगत विवेचना की है इससे सिद्ध होता है कि श्रमणा महाकाव्य का शूद्रो की श्रेयता प्रमाणित करना भी एक महत्वपूर्ण प्रयोजन है।

दशवें सर्ग के अन्त में एक छंद दृष्टव्य है–

दशम् सर्ग के श्रद्धायुत विश्वास पठन पाठन से,
सफल मनोरथ हो जाते है, तन से मन से धन से।

कवि अपने पाठको, श्रोताओं के तन, मन, धन के सभी मनोरथों को सफल बनाने का प्रयोजन इसके श्रद्धा और विश्वास पूर्वक पढ़ने से सिद्ध होने का आश्वासन देता है।

बारहवें सर्ग में कवि ने चरित्र पर विशेष बल दिया गया है। जयन्त की कथा के माध्यम से कवि कहता है–

सिद्ध हुआ भू स्वर्ग बनाना नहीं राम का मत है,
वरन् मनुज को देव सिद्धि करना ही उनका व्रत है।
यह सम्भव है जभी मनुज में जब चरित्र का बल हो,
संयम का सोपान सुदृढ़ संकल्प शक्ति निश्चित हो।
जो चरित्र सम्पत्ति सुयश सुख नित्य वरण करता है,

महाकाल भी यश शरीर उसका न क्षरण करता है।
सर्व सम्पदा देश काल वश मान स्वयं खोतती है,
परचरित्र की मुद्रा जग में, सर्व मान्य होती है।
सद चरित्र की महिमा कोई कभी न गा सकता है,
दइस पर चलने वाला इसका अनुभव पा सकता है।

इस प्रकार समाज में सद चरित्र का प्रसार हो यह भी इस महाकाव्य का प्रयोजन हैं।

तेरहबें सर्ग के मंगलाचरण में लगभग सम्पूर्ण रूप से श्रमणा महाकाव्य का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। कुछ छंद दृष्टव्य है–

यह विशाल संसार यज्ञ का विशद गात्र है,
जिससे यह मेरी श्रमणा आहुती मात्र है।
महायज्ञ करने की मुझमें शक्ति नहीं है,
उन कैसी साधना ज्ञान तप भक्ति नहीं है।
किन्तु यज्ञ की साधका मैं न कर सका संवरण,
शुद्ध कर संकू इसी से, शायद कुछ वातावरण।
यह साहित्यक यज्ञ पूर्ण निष्काम कर्म है,
तुलसी की रामायण का यह मर्म मर्म है।
केवल कवि पर श्रद्धा रख जो इसे पढेगा,
भक्ति कर्म का ज्ञान बोध ही सतत बढेगा।
तर्क वितर्क रहस्य के, उत्तर सब मिल जायेंगे,
जिनकी जैसी भावना, वे वैसा फल पायेंगे।
फल की इच्छा नहीं, विश्व हित की इच्छा है,
वर्तमान सन्दर्भो में मानस शिक्षा हैं।
इससे भावी भ्रमित पथिक सतपथ पायेंगे,
छुद्र प्रवाह मलिन सरिता के रूक जायेंगे।
वे यथार्थ आदर्श को, मिला गये परामार्थ में,

मैने परिणित कर दिया, है आदर्श यथार्थ में।

इन छन्दो के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि अतीत के आदर्श को यथार्थ रूप में समाज को देकर उसका मार्ग प्रशस्त करना चाहता है। वह भ्रमित पथिको को सत पथ दिखलाना चाहता है।

चौदहवें सर्ग के अन्त में दो दोहो से भी ग्रन्थ का प्रयोजन स्पष्ट होता है –

ज्यों चित चिन्ता हरण को, हरि चिन्तन है हेतु,
त्यों भव सागर तरण को, श्रमण कथा है सेतु।
राम चरित मानस विमल, भक्ति द्वार अनुमान
श्रमणा की यह वर कथा, मंजु अर्गला जान।
तुलसी से भगवत चरित्र, बचा न कुछ भी शेष
इसी हेतु गाता रूचिर, भक्ति चरित अवधेश।

कवि का कथन है कि जिस प्रकार मन की चिन्ताओं को दूर करने के लिए ईश्वर का चिन्तन उपयोगी सिद्ध होता है उसी प्रकार इस संसार रूपी सागर को सहज ही पार करने के लिये यह श्रमणा की कथा पुल की भांति उपयोगी सिद्ध होगी। दूसरे दोहे में राम की भक्ति में प्रवेश करने के लिये श्रमणा की कथा बन्द द्वार को खोलने के लिये अर्गला (सांकर) का काम करेगी। तीसरे दोहे में तुलसी दास जी के द्वार सम्पूर्ण रूप से राम का चरित गाया जा चुका है इसीलिये इसमें भक्ति स्वरूपा श्रमणा का चरित्र गाया गया है।

सत्तरहवें सर्ग के अन्त में कुछ छन्द दृष्टव्य है जिनसे इस ग्रन्थ का प्रयोजन सिद्ध होता है।

देश धर्म के जाति संस्कृति के सच्चे नायक है।
वर्तमान की तृप्ति हेतु इसमें अति पावन जल है,

बाल्मीक तुलसी के सोपानों का वृत विमल है।
औषधि मुख में कटु लगे, पचकर करे निरोग,
श्रमण कथा उस भांति, जोड़ेगी संयोग।
श्रद्धा युत विश्वास से, पढ़कर सज्जन वृन्द,
खोजेगे तो पायेंगे, तृप्ति तोष आनन्द ।।

प्रथम छन्द में चरित्र को संभालकर गाने का संदेश कवि ने दिया है। संभालकर गाये हुये चरित्र के द्वारा ही देश, धर्म, जाति, संस्कृति का उत्थान किया जाना सम्भव है, दूसरे छन्द में वर्तमान की समस्त जिज्ञासाओं से तृषित समाज को तृप्ति करने का पवित्र जल इस श्रमणा महाकाव्य में भ दिया गया है। प्रथम दोहे में कवि का कथन है कि जिस प्रकार कड़वी औषधि पचकर तन को स्वस्थ कर देती है, उसी प्रकार यह श्रमणा की कथा भले ही किसी आलोचक को अच्छी न लगे किन्तु जन सामान्य के मानसिक रोगो को यह नष्ट अवश्य कर देगी किन्तु एक शर्त है इस कथा को श्रद्धा और विश्वास से अध्ययन करना आवश्यक है तभी तृप्ति, संतोष और आनन्द की उपलब्धि होगी।

अठारहवें सर्ग के अन्त में कुछ छन्दो के अध्ययन से श्रमणा का उददेश्य प्रकट होता है –

उन्हीं देवताओं का यह मानव चरित्र ही जानो,
पौराणिक गाथाओं का आधुनिक संस्करण मानो।
वेद पुराण उपनिषद इसमें सार अंश सब ही का,
संस्करण संयुक्त जानिये बाल्मीक तुलसी का।
ब्रह्म चरित के हेतु तो, नेति शब्द अभिराम,
पर न सिद्ध करना सरल, नर मर्यादित राम।
मानव मर्यादा सभी, किस विधि राखी राम,
श्रमणा की इस कथा का, है उददेश्य ललाम।

प्रथम तथा द्वितीय छन्द में देवताओ का मानवीय करण अर्थात मानव के रूप में अनुकरणीय चरित्र का वर्णन करने का उदद्देश्य भी श्रमणा महाकाव्य का है। इसमें वेदो पुराणों उपनिषदों एवं स्मृतियों का समस्त सार अंश रूप में वर्णन करने का उद्देश्य भी कवि का है। प्रथम दोहे में कवि का कथन है कि निराकार ब्रह्म का वर्णन करना तो सर्वथा असम्भव है इसी लिये वेदों ने नेति–नेति कहकर अपनी असमर्थता प्रकट की है। दूसरे दोहे में ब्रह्म स्वरूप राम ने मानव की मर्यादाओं का अपने चरित्र के द्वारा किस प्रकार पालन करके समाज को पथ दर्शन कराया है यह भी श्रमणा महाकाव्य का उत्तम और सुन्दर उदद्देश्य है।

बीसवें सर्ग के अन्त में श्रमणा की इस कथा को कल्पवृक्ष की उपमा देकर मन को विश्राम पाने का उदद्देश्य कहा है।

ग्रन्थ के अन्त में इक्कीसवें सर्ग में भी ग्रन्थ रचना का प्रयोजन कहा गया है –

सत्य ज्ञान के साथ धर्म पर टिका हुआ जग सारा,
इनका निर्वाहन करना ही था प्रिय धर्म हमारा।
सुख दुख के प्रभाव से बचने की एक ही क्रिया है
प्रेम भक्ति से जीवन जीने का उपदेश दिया है।
प्रेम जीव से भक्ति ब्रह्मा से करना यदि सीखोगे,
इस मनियों के विशद देश में हीरा से दीखोगे।
श्रमणा का उदद्देश्य यही जीवन में सदा रहा है,
गाकर काव्य प्रबन्ध यथामति मैंने उसे कहा हैं।

छन्द चौदह में कवि का कथन है कि सत्य, ज्ञान, और धर्म ही सारे संसार का आधार है इस महाकाव्य में इन्हीं का निर्वाह किया गया है अर्थात् सत्य के तेहर प्रकार, ज्ञान की सात भूमिकाये, और धर्म का विश्लेषण राम

कथा के माध्यम से विस्तार पूर्वक हुआ है। इसमें इक्कीस सर्ग दिये गये है। उनका तात्पर्य है सात+तेरह+एक = इक्कीस। इस प्रकार कुल इक्कीस सर्ग हुये जो संसार के आधार है। छन्द संख्या चार में सुख–दुख के प्रभाव से बचने के लिये प्रेम और भक्ति पूर्वक जीने की प्रक्रिया इस ग्रन्थ में दी गई है। प्रेम जीवों से और भक्ति ब्रह्म से करने पर ही मनुष्यों के इस समूल में हीरा के समान दीप्तमान हो सकता है। श्रमणा महाकाव्य का यही उद्देश्य है जिसको इस काव्य प्रबन्ध में स्थापित किया गया है।

निष्कर्ष

इस अध्याय में प्रयोजन शीर्षक से ग्रन्थ की अनेक पंक्तियों के द्वारा प्रयोजन पर प्रकाश डाला जा चुका है। प्रारम्भ में जो श्लोक दिया गया है उसके अनुसार सभी प्रयोजनों (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का निर्वाह इस महाकावय में हुआ है इसके साथ ही अन्य विचारकों के मनतव्यों का भी समावेश हुआ है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इसमें भक्ति के माध्यम से ईश्वर का चरित्र मानवीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना भी एक उद्देश्य है ताकि मानव उसका अनुसरण कर सके। अपनी बात में कवि में लिखा है – (गाँधी जी ने) अपने देश के लिये बड़े से बड़े जोखिम उठाये। लाठी और लंगोटी के बल पर देश विदेश फिरे, हरिजनों दलितों और उपेक्षितों को अपनाकर गले लगाया और उनके मसीहा बनें। इसी प्रकार श्रीराम भी तो ऐसे ही अपने आर्यावर्त, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये तापस वेष विशेष उदासी के रूप में वन–वन फिरे, अहिल्या, निषाद, कोल भील, केवट, जटायु, शबरी और बानरों से मिलकर रावण ऐसे दुर्धर–त्रिलोक शत्रु पर विजय प्राप्त की। हरिजन भी तो अभाव ग्रस्त हेय, त्याज्य और दलित गिने जाते रहे। इन्हें भी तो घृणा और छुआछूत रूपी राक्षस खाये जा रहा था। इन्हीं को आत्मसात कर गांधी जी ने इतने बड़े अभियान में सफलता प्राप्त की थी। राम को भगवान मानकर बहुत कुछ लिखा जा चुका था, अब उनका चरित्र

मानव की कसौटी पर कसने की भी तो आवश्यकता थी। इन्हीं मूल धारणाओं ने इस महाकाव्य को जन्म दिया। जो सर्वथा इस महाकाव्य का प्रयोजन सिद्ध करते है।

4. पात्र योजना

भूमिका –

गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से भारतीय आर्य भाषाओं का साहित्य कृष्ण की अपेक्षा राम को लेकर कुछ कम ही लिखा गया है वेदों में राम का उल्लेख दो प्रकार से हुआ है। राम जो समस्त सृष्टि में रमता है वह "र" बीज से बना है जो ब्रह्मा का द्योतक है। दूसरे वंशावली के रूप में सूर्यवंशी राजाओं की वंशावली में मिलता है। वेदों के बाद उपनिषदों में भी एक रामोपनिषद है। संहिताओं में भी वशिष्ठ संहिता में राम का उपख्यान हैं। वशिष्ठ संहिता संस्कृत साहित्य का ग्रन्थ है जो आदि कवि वाल्मीकि की रचना मानी जाती है किन्तु वशिष्ठ संहिता वाल्मीकि रामायण के बाद की रचना हैं। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण ही रामचरित्र का एक प्रमाणित विशद ग्रन्थ है जिसे आदि ग्रन्थ कह सकते हैं तत्पश्चात अनेक ग्रन्थ रामचरित्र पर संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं जिसमें कालिदास का रघुवंश महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य में अनेक कवियों ने रामचरित्र पर अपनी लेखनी चलायी है किन्तु तुलसी का रामचरित्र मानस अद्वितीय और अन्तिम ग्रन्थ हैं। इस दृष्टि से श्रमणा महाकाव्य का प्रेरणादायक श्रोत तुलसी और वाल्मीकि रामायण ही है। अब तक की रामायणों में राम को ब्रह्मा अथवा विष्णु का अवतार माना गया हैं किन्तु श्रमणा में राम का चित्र मर्यादा पुरूषोत्तम मानव राम को मानकर ही प्रस्तुत किया गया हैं। उपरोक्त ग्रन्थों की तुलना में राम का ऐसा कोई भी कार्यकलाप श्रमणा महाकाव्य में

दृष्टिगोचर नहीं होता जिसमें भगवत्ता अथवा कोई चमत्कार दिखाया गया हो। सिंहावलोकन में कवि ने लिखा है –

अतीत को वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत करना देवत्व का मानवीय परिप्रेक्ष्य में दिग्दर्शन कराना ही श्रमणा का मुख्य उद्देश्य है, तभी तो उसका मानव के अनुकरण में आना संभव हैं। राम अंशी भी हैं और अंश ब्रह्मा भी है और मानव भी, सम्पूर्ण आध्यात्मिक साहित्य राम के ब्रहात्व दर्शन से भरा पड़ा है किन्तु ऐसा लगता है कि उनका मानवी पक्ष दब सा गया हैं। यही कारण है कि आज मान कर्मवाद को भूलकर द्वैत वाद का आश्रय अधिक लेने लगा है, जब गीता का ब्रह्मा कृष्ण अठाहर अध्यायों में कर्म का ही उद्घोष कर रहा है तो मानस का ब्रह्मा अंश राम का कर्म पक्ष क्यों गौण रह जायें। श्रमणा काव्य की समस्त घटनायें मानवोचित तथ्यों में ही अंकित करने का प्रयास किया गया है।

उपरोक्त कथन श्रमणा महाकाव्य के प्रत्येक पात्र के विषय में चरितार्थ होता है जिसमें अवधेश जी ने प्रत्येक पात्र के चरित्रांकन में नूतन प्रतिभा और कल्पना से काम लिया है। श्रमणा महाकाव्य वर्तमान युग की विचारधाराओं को एक नवीन रूप देने का प्रयास करता है। प्राचीन संस्कृति के प्रत्येक अध्याय को नवीन कलेवर देकर युगानुरूप चित्रण करके समय की मांग को पूर्ण किया है, जिसको प्रत्येक पात्र के चरित्र चित्रण में देखा जा सकता हैं।

राम नायक –

राम यद्यपि पुराण पुरूष हैं किन्तु श्रमणा महाकाव्य में राम का चरित्र परम्परावादी लक्षणों से युक्त होते हुये भी वर्तमान विचार धारा के अनुकूल चित्रित हुआ हैं। वे कह उठते हैं –

दुष्ट दमन का ही न देवि मैं, ब्रत लेकर आया हूँ

भ्रमित पंथियों को सपन्थ का भी विकल्प लाया हूँ

राम अपने चरित्र के द्वारा भ्रमित लोगों को भी पथ दिखलाना चाहतें हैं।

गौतम त्रिषि को उपदेश करते हुये कहते हैं।

है समर्थ का कार्य निबल को बल देकर अपनाना,
गिरे हुओं को हाथ पकड़कर ऊंचा और उठाना
तरू समीप के बन न सके चन्दन, तो कैसा चन्दन
वह कैसा पावस जो लोहा बना न पाया कंचन।
वैद्य निकल जायें अरू रोगी भरते रहें कराहें,
धिकधिक है वह सबल निबल की हर न सके जो आहैं।
घृणा पाप से होती पारी से क्या कोई करता,
त्यागा जाता मैल न आभूषण कोई तजता।

इसी प्रसंग में राम वर्तमान की ओर इंगित करते हुये कहते हैं—

घृणित उपेक्षित इस प्रकार ही यदि त्यागे जायेंगे,
आप सदृश मुनिवर इस जग में थोडे ही पायेंगं।
एक दिवस होगा कि बहुत मिल कर से सबाल बनेंगे,
और आपके मत को ये छल छदम स्वार्थ कह देगें।
इस समाज बट के पल्लव हम पुनः कहां पायेंगे,
यदि यों ही यह जीर्ण शीर्ण हो नीचे गिर जायेंगें।
नीचे गिरकर हे मुनिवर यह सभी सूख जायेंगे,
बहुमत वायु वेग से उडकर जड़ समीप आयेंगे।
फिर प्रतिशोध अग्नि की ज्वाला इनमें भड़क उठेगी।
जड़ समेत उस वट विशाल की भस्मसात कर देगी।
ऐसा होने में मुनिवर युग भले बीत जायेंगे,
पर इसके प्रतिकार हेतु वह दिन अवश्य आयेंगे।

उपरोक्त पंक्तियों में आज के वर्ग संघर्ष की ओर इंगित किया गया हैं। राम समय की गति के साथ चलने के लिये सहमत हैं। मैं श्रमणा के राम नारी के बिना मानवता को अधूरी मानते हैं। दोनो नर–नारी जब तक कंधे से कन्धा मिला कर समान रूप से नहीं चलेंगे तब तक पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

बोल उठे रघुवर न किसी का कोई उपराधी है,
सच पूछो तो नारी के बिन मानवता आधी हैं।
न नारी मिल कर ही मानव संज्ञा कहलाती है,
जब तक एक न हों तब तक, पूर्णता नहीं आती है।

रावण से पीड़ित होकर जब दक्षिणवासी उत्तर की ओर भागे तो श्रमणा ने उनको अयोध्या जाने के लिये कहा। उनके साथ श्रमणा का दूत भी गया। उसने आंखो देखा हाल श्रमणा को विस्तार से बतलाया जब कैकयी ने राम को दक्षिण वासियों की सहायता के लिये वन जाने को प्रोत्साहित किया और अपने दूध की स्मृति दिलाकर लोक हित का महत्व समझाया तो राम कह उठते हैं –

रामभद्र मुसकाकर बोले पुर्नस्मृति न करायें,
भूला हूँ कर्तव्य न अपना, माता की शिक्षायें।
मॉँ के त्याग और तप का, सारा फल मैंने पाया,
जगहित करने को ही जग में, राम आपका आया।
मिला मुझे वात्सल्य आपका, सदा भरत के बदले,
मानस पुत्र तुम्हारा ही हूँ, भले भरत जग कहले।
माता की आशीष शीश पर, मै सहर्ष लेता हूँ,
आर्तजनों को मैं आश्वासन अभी दिये देता हूँ।

इस प्रकार से सरयूतट पर भी दक्षिण वासियों को अभयदान देते हुये प्रतिज्ञा करते हैं –

पितृ वचन ने दियो दुक्ख, मैं क्षमा माँगने आया,
और आपको अभय बनाने का, अपना व्रत लाया।
प्रातः काल अवध से, दक्षिण को प्रस्थान करूँगा,
आप सभी के सुख हित रावण वध अभियान करूँगा
मातृ सदृश पावन सरयू की, शपथ ले रहा हूँ मैं,
आप सभी को अभय दान का, वचन दे रहा हूँ मैं।

यह मौलिक उद्‌भावना राम की विनम्रता और परहितकारी तथा दृढ़ संकल्प शक्ति का परिचायक है।

अभी तक राम कथा में कैकेयी द्वारा दशरथ से दो वरदान मांगने का प्रसंग सर्वविदित है। इस कारण दशरथ का भरत के प्रति उदासीन होना दिखाया गया हैं। कैकेयी के अपने पुत्र भरत के लिये राज्य मांगने की बात भी सर्वविदित हैं किन्तु श्रमणा ने इन दोनो दशरथ और कैकेयी का उपरोक्त आरोप बड़े सुन्दर ढंग से दूर कर दिया हैं। कैकयी सर्वथा निर्दोष है क्योंकि तुलसी के अनुसार राम कहते है –

दोष देई जननि जड तेई।
जिन गुरू साधु सभा नहिं सेई।।

इसी प्रसंग में देवताओं के गुरू बृहस्पति भी इन्द्र को समझाते हुये कहते है कि भरत के चित्रकूट जाने के कार्य में बाधा मत पहुॅचाओं क्योंकि यह सब राम की इच्छा के अनुसार हो रहा है। मंथरा की मति फेरने में भी राम का रूख था। इस तथ्य को सिद्व करने के लिये राम स्वयं दूसरा वरदान मांगने के लिये कैकयी को बाध्य करते है। जिससे राम का मात्र

स्नेह और औदार्य तो सिद्ध होता ही है। कैकयी का कलंक भी धुल जाता है। राम के बाध्य करने पर कैकयी राम को वन भेजने का वरदान मांगने के लिये तैयार हो जाती है किन्तु राम दूसरा वरदान भरत का राज्य देने के लिये भी मांगने को बाध्य कर देते है।

होकर कुछ गंभीर राम बोले उपाय उत्तम है।
किन्तु पिता की द्वितीय घोषणा का क्या उपक्रम है।
प्रातः बेला में ही वे सन्यास राज्य से लेगें।
माँ बतलाओं? अवध राज्य का भार किसे फिर देगें।
स्वीकारें यदि आप, कहूँ तो मै भी अपने मत को,
क्यों न सौंप दे माता यह कौसल की राज्य भरत को।
दोनों ही वर आप मांग ले वन में राम रहेंगे,
भरत द्वितीय युवराज, भार शासन का वहन करेंगे।
छूकर चरण राम वोले, जब माता हैं सहयोगी,
तो निश्चय ही दक्षिण की, दिग्विजय राम की होगी।
जब से मुझे मिली स्मृति, तब से मैंने देखा है,
मातृ मंत्रणा ही, स्वराज्य की मेरू दण्ड रेखा है।
माँ के आशीर्वाद, कुशल निर्देशन साथ रहेंगे,
सकुशल शासन भरत, और हम दक्षिण विजय करेंगे।
मागू मैं वरदान, दूसरा वर भी पितु से मांगे,
बने भरत है नहीं, नहीं, तो कार्य संभल जाता सब,
मेरा और तुम्हारा पितु का, व्रत भी पल जाता सब।
भरत राम का अनुपूरक है एक हृदय दो छाती।
मां यदि होते भरत, परीक्षा तों इसकी हो जाती,
अश्रु भरे नयनो से, माँ की ओर राम ने देखा।
उनके मुखपर भी अंकित थी, अति विषाद की रेखा,

कैकेयी झट उठी राम को उर से लगा लिया था,
बर दूसरा मांगने को भी, अपना वचन दिया था।

श्रमणा महाकाव्य का यह प्रसंग यद्यपि सर्वथा मौलिक है किन्तु पूरा प्रसंग तथ्य पूर्ण, तर्क संगत और तुलसी से समर्थित है।

चित्रकूट में जनक सहित सीता की मां सुनैना पहुंच जाती है। वे सीता की दशा देखकर व्याकुल हो उठती है और राम को तीखे शब्दों में उलाहना देती हैं। उस पर राम उनके कहने का बुरा नही मानते है और विनम्र शब्दों में सुनैना को समझाते है। वे इस प्रसंग में माता पिता के त्याग का उल्लेख करते हुये पुत्र के कर्तव्य को भी इंगित करते है –

बोले राम आपने मां दुख वश वचन कहा है,
इसका अर्थ नही कि आपमें नही विवेक रहा है।
माता पिता जिन्होंने सुत को जीवन दान दिया है,
सुत के सुख के हेतु स्वयं का सुख बलिदान किया है।
भूख प्यास निद्रा सर्दी गर्मी सुत के हित त्यागी,
अपना सुख दुख सभी भूलकर सुत पर ही अनुरागी।
सूखे वस्त्र विछाकर सुत को, स्वयं आद्र में सोती,
माता के तप और त्याग की समता कभी न होती
ऐसे मातृ पितृ की आज्ञा यदि न पुत्र ही माने,
मानव कहना उसे व्यर्थ है उसको पशु ही जाने।
अगर चाहती सीता भी तो मिथला जा सकती थी,
किन्तु आपका सहजस्नेह क्या इसमें पा सकती थी।
अवध छोड़ कर सीता भी यदि मिथलापुर को जाती,
तो नारी की मर्यादा पर क्या न कलंक लगाती।
अवधि वीतने तक न अवध रहना सीता ने माना,

मातायें साक्षी है बन में, आने का हठ ठाना।
यदि हठ के वश ही सीता को अवध छोड़ आता मैं,
पति का धर्म तभी च्युत होता साथ न यदि लाता मैं।
ऐसा कहकर राम भद्र ने, जनक सुता को देखा,
जिनके मुख पर खिची हुयी थी, अति विषाद की रेखा।

इसमें जहां राम के माता पिता के प्रति उदात्त भक्ति भावना दिखाई देती है वहां उनके शील के भी दर्शन होते है। राम एक चरित्रवान नायक है वे सामाजिक मर्यादाओं की पालन करने में सदैव तत्पर रहते है। जब अहिल्या पत्थर की कारा से मुक्त होकर राम के चरणों में आ गिरी तो वे दूर हट गये और ऋषि पत्नी को अपने चरण नहीं छूने दिये बल्कि उसको धैर्य बंधाया –

दो पग पीछे हटे राम, स्वकरों से शीघ्र उठाया।
मत अधीर हो ऐसे तुम, हो गई मुक्त हे आर्या।

इसी प्रकार लक्ष्मण द्वारा विराध को मार देने पर उन्हें धन्य कहकर स्नेह से अपनी वाहों में भर लिया। आगे बढ़ने पर उनकी प्रशस्ति करने के लिये जंगल के ऋषि और मुनि उन्हें आशीर्वाद देने के लिये आये। आशीर्वाद के साथ–साथ जब ऋषि मुनि रावण से अपने को दुखी होने के बात कहते है तो राम उन्हें अभय दान देते है और चरित्र का महत्व बतलाते हुये कह उठते है –

कहा राम ने हे मुनिवर सब आप अभय हो जाये,
असुर न अब लक्ष्मण के वाणों से सकुशल रह पाये।
जो चरित्र से च्युत है, मानवता से गिरे हुये है,
हे रिषियों वे तो समझो जीवित ही मरे हुये है।
मेरे लक्ष्मण में हे मुनियों इतना रण कौशल है,
मार सकेंगे सहज जगत में जितना निश्चर दल है।

हे चरित्र का बल अजेय ध्रव सत्य सत्य कहता हूँ,
आप सभी के शुभाषीश के बल पर वन में रहता हू।
लक्ष्मण तो मेरे हाथों की अमूल्य थाती है,
इसके संकट के पहले, पहिले मेरी छाती है।

सत्तरहवे सर्ग में खरदूषण अपनी अपार सेना लेकर जब राम की कुटिया को घेर लेता है तो लक्ष्मण युद्ध के लिये तैयार होकर कुटियां से बाहर जाने लगते है किन्तु राम उन्हें जाने से रोकते है। क्योंकि राम अपने छोटे भाई को जोखिम में नहीं डालना चाहते थे क्योंकि उनकी रक्षा का भार स्वयं वहन किये है। यह राम की वयं रक्षामि गुण का द्योतक है। इस प्रकार वह चौदह अक्षोहिणी सेना एक ही बार में वायु प्रदूषण अस्त्र चलाकर राम ने समाप्त कर दी और खरदूषण को आग्नेय वाण से नष्ट कर दिया इस प्रसंग में जहां युक्ति वैचित्रय का कौशल दिखाई पडता है वहां उनके अदम्य साहस धैर्यता और वीरता के दर्शन होते है।

कहा प्राण लक्ष्मण तुम मेरे, मैं हूँ देह तुम्हारी,
प्राणों के पहिले होती है, सदा देह की बारी।
आज तुम नहीं, निशाचरों का हम संहार करेगें,
पर्ण कुटी में भाभी का भय, लक्ष्मण हरण करेगें।
क्यों सीते क्यों मौन खड़ी हो तुम भी तनिक बताओ,
कथन हमारा क्या न उचित है, लक्ष्मण को समझाओ।
हर्ष विशाद स्वर में बोली सीता मुस्काकर,
कथन आर्य का सच है, आये सेना सहित निशाचर।
आज आर्य ही इन दुष्टों को, अनी सहित संहारे,
प्रिय देवर ही, अपनी भाभी की रक्षा स्वीकारें।
लक्ष्मण ने कुछ कहने को ज्यों तनिक अधर पुट खोले,
उन्हें हाथ से रोक राम, मीठी वाणी में बोले।

हठका समय नहीं लक्ष्मण सीता को अभय बनाना,
तुम निश्चित रहो, सकुशल ही होगा मेरा आना।
ऐसा कह, रघुपति ने अपने धनु तूणीर उठाये,
लख असंख्य दल निशाचरों का उच्च शिखर पर आये।

इस प्रकार वह चौदह अक्षोहिणी सेना एक ही बार में वायु प्रदूषण अस्त्र चलाकर राम ने समाप्त कर दी और खरदूषण को आग्नेय वाण से नष्ट कर दिया इस प्रसंग में जहां युक्ति वैचित्य का कौशल दिखाई पड़ता है वहां उनके अदम्य साहस धैर्यता और वीरता के दर्शन होते है।

अठारहवें सर्ग में सीता एक भयंकर स्पप्न देखती है भयभीत होकर राम से लिपट जाती है और कहती है यह स्वप्न निश्चय ही सत्य होगा इसके प्रायशित के लिये कोई अनुष्ठान करायें ताकि यह अनिष्ट टल जाये। राम अपनी संस्कृति के अनुकूल रिषियों की पूजा एवं भोजन के लिये लक्ष्मण को कंदमूल फल लाने के लिये भेज देते है–

राम भद्र ने इंगित से लक्ष्मण को निकट बुलाया,
भाभी के शुभ अशुभ स्वप्न का सब वृतान्त सुनाया।
तत स्वप्न फल शमन हेतु रिषि अर्चन आज करायें,
सरस कंद फल मूल फूल ले मध्य दिवस तक आयें।

इस प्रकार राम प्रचलित धार्मिक परम्पराओं और मान्यताओं के प्रतिपालन में हमेशा तैयार रहते है। इसी प्रसंग में जब वेदवति को लेकर अग्नी ऋषि राम की कुटिया पर पहुँचते है और सीता की जुडवा बहिन वेदवति को सीता से बदलकर सीता की सुरक्षा के लिये अपने यहां ले जाने के लिये कहते है। तो राम गम्भीर हो जाते है और सीता से परामर्श करने के लिये वे अग्नी ऋषि ओर वेदवति को पर्ण कुटी में ले जाते है सीता

अग्नि ऋषि के साथ जाने के लिये तैयार नहीं होती तो राम अपना मंतव्य दृढ़ संकल्पता के साथ व्यक्त करते है –

सीते रिषि का कथन कहँ तक उचित और अनुचित है।
सोचे इसमें अपना सबका हित है या अनहित है।
दृढ़ संकल्प हमारा रावण का वध हम कर देगें।
किन्तु सत्य यह भी है तब अपयश हम सह न सकेगें।
सीता का अपवाद राम का भी अपवाद बनेगा।
सीता राम राम सीता जग में दो कौन कहेगा।।
यद्यपि होगा शुद्ध किन्तु जब लोक विरूद्ध कहेगा,
राम भले ही सहे, किन्तु कब राजाराम सहेगा।
इन रिषि मुनियो ने जग का हित चिन्तन किया है,
रह निस्वार्थ दूसरो के हित जीवन सदा जिया है।
दूरदर्शिता और सजगता उन्नति की साधक है,
रूढ़ि संकुचित दृष्टि कोण पुरूषार्थ हेतु बाधक है।
आप अग्नि रिषि के समीप रह करें प्रतीक्षा मेरी,
हो जायेगी आज विश्व में पूर्ण परीक्षा मेरी।
लंका जय संदेश शीघ्र ही तुमको पहुँचा दूँगा,
लक्ष्मण के द्वारा सीते अति शीघ्र बुला मैं लूंगा।

इससे पता चलता है कि राम का आत्म विश्वास और संकल्प दृढ़ है और वे सीता का किसी भी प्रकार का अपवाद सहने के लिये तैयार नहीं है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये वे सीता से अग्नि ऋषि के साथ जाने को उचित ठहराते है। यहां भी राम लोक मर्यादा को कायम रखते है। बाल्मीकि के अनुसार अयोध्या में धोबी के द्वारा सीता का जो लांछन लगाया गया था उसका परिमार्जन करने के लिये रचनाकार ने यह प्रसंग प्रस्तुत किया है।

श्रमणा के राम जहां गंभीर उदात्त स्वभाव वाले है, वहां वे सरल, छल रहित है। विषम परिस्थिति में भी उनके साथ कटु विनोद करने वाले को भी वे सम्मान देते है। सती के द्वारा सीता का वेष बनाकर उनकी परीक्षा लेने पर भी वे अपना शील और सुहृदयता नही त्यागते है। शंकर इस घटना का वर्णन करते हुये राम की प्रसंशा करते है–

मौन उठ खड़ी हुई वही पर बल्कल वेष बनाया,
कुसमय कर सीता का अभिनय विकृत विनोद रचाया।
राम सजग सर्वज्ञ सती का छल सब सब जान गये थे,
मेरा नाम बताया, उनको भी पहचान गये थे।
श्रमणे उनके कटु विनोद से राघव तनिक न डोले,
बुरा न माना वरन वचन सम्मान सहित ही बोले।
विषम परिस्थिति में भी अति सम्मान दिया राघव ने,
घूम रही किस हेतु अकेली पूँछ लिया राघव ने।

श्रमणा अन्य रामायणों की भॉति मात्र केवल प्रेमी भक्त ही नहीं है वह राम के लोक मंगल कार्य में सक्रिय सहयोगिनी भी है। जब ऋषियों द्वारा श्रमणा के बारे में यह ज्ञात हुआ कि श्रमणा से बिना मिले आपका कार्य पूरा नहीं हो सकता तो वह लक्ष्मण के साथ उससे मिलने के लिये व्याकुल हो उठते है किन्तु श्रमणा राम की प्रतीक्षा करते करते अपना धैर्य खो चुकी थी, मिलने की आशा बिलकुल न थी। अपने जीवन का लक्ष्य पूरा होते हुये न देखकर उसे बहुत दुख होता है और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई। राम को ज्यों ही यह आभास हुआ उनका हृदय करूणा से भर गया और लक्ष्मण से कह उठे–

आन्दोलित हो उठा हृदय अम्बुध करूणा कर का
कहा लक्ष्मण से बिलम्ब मत करों तात क्षण भर का

देखो पाँचो भूत मौन हो गये अचानक कैसे
जीवन भर की साथ लिये योगी प्रशात हो जैसे
यह मतंग रिषिवर का आश्रम जो सन्मुख दिखलाता,
रहती उनकी शिष्या श्रमणा विदुषी परम सुजाता।
कैसी विषम मूकता छाई कुछ न अनर्थ हुआ हो,
हाय हाय मेरा व्रत सारा कहीं न व्यर्थ हुआ हो।
मुझसे मिलने की आशा में खोया सारा जीवन,
ऐसा न हो विलम्ब हो गया, कर न सकूँ मैं दर्शन।
यह निशब्द आश्रम अनिष्ट की आशंका कहता है,
जाने क्यों उर में करूणा का विकल श्रोत बहता है।
चलो चलो अतिशीघ्र पगों की गति कुछ तीव्र बनाओ
कर निष्काम भक्ति का दर्शन जीवन का फल पाओ ।

प्रेम का मूल्य और महत्व बतलाते हुये राम लक्ष्मण से कहते हुये श्रमणा की कुटिया की ओर दौड़ पडते है--

लक्ष्मण जग में भला प्रेम का मूल्य कौन दे पाया,
मानव क्या परमेश्वर उससे खिचकर भू पर आया।
दौड़ पड़े थे राम कुटी में शीघ्र प्रवेश किया था,
तभी सारिका ने व्याकुल स्वर में संदेश दिया था।

श्रमणा की कुटिया में पली हुयी सारिका उसकी सारी व्यथा राम को सुनाती है और श्रमणा के प्राण बचाने के लिये कहती है। सारिका के द्वारा श्रमणा की करूण कथा सुनकर राम की आँखों में आंसू आ गये वे उसे उठाकर अपनी गोद में रखकर पानी से उसका मुँह धोते है और लक्ष्मण से हवा करने के लिये कहते है। बिना किसी भेद भाव के अपने हाथों से उसका मुँह धोने लगते –

धनुष वाँण फेका रघुपति ने नीर द्रगों में आया,
भू अभिमुख श्रमणा को निज हाथों से शीघ्र उठाया।
रखा अंक में शीश, कंज मुख से कच जाल हटाया,
ढुलक पड़े द्वग विन्दु विवश मानो था अर्थ चढ़ाया।
लगे पोछने शीघ्र धूल कण, राघव अपने कर से,
पोंछे मुख के अश्रु शीघ्र ही मंजुल पीताम्बर से।
समय नहीं है लक्ष्मण नयनों में मत नीर भरो तुम,
कठिन मूर्छा हुई पीत पट से कुछ व्यजन करो तुम।
लाओ तुम शीतोदक से वह मेरा भरा कमण्डल,
अश्रु बिन्दु हा सूख गये है, धो डालें मुख मण्डल।
ऐसा कहकर शीतल जल में शीघ्र दुकूल भिगोया,
अपने कर से राम भद्र ने श्रमणा का मुख धोया।

राम के उपचार करने से श्रमणा में चेतना आ जाती है। राम श्रमणा से विलम्ब के लिये क्षमा याचना मांगते है और मन वांच्छित फल देने का आश्वासन देते है–

बोल उठे श्रीराम उठो, श्रमणे श्रमणे मैं आया,
शुभ दासरथि राम तुम्हारे मन बांछित फल लाया।
अधिक विलम्ब हो गया भद्रे मुझको क्षमा करो तुम,
[illegible]

इस प्रसंग में राम की निरभिमानता और परदुख कातरता के अनुपम दर्शन होते हैं।

श्रमणा राम की भक्त ही नहीं वह लोक सेविका भी थी और राम लोक नायक यही कारण है कि राम का श्रमणा के प्रति अनन्य प्रेम और आकषण था. व श्रमणा का सात्वाना दत ह–

यों अधीर मत हो श्रमणे तुम करो धैर्य को धारण,
हुआ आगमन वन में मेरा शुभे तुम्हारे कारण।

राम श्रमणा से सब कुछ मांगने के लिये कहते किन्तु साथ में सार्मथ्य की भी बात करते है अर्थात हमारी सार्मथ्य में जो कुछ भी संभव होगा दे सकते है–

जो चाहे माँगों में सामर्थ्य सहित सब दूँगा,
अनुपम है तप त्याग तुम्हारा वह न कभी न भूलूंगा।

यहां सामर्थ्य शब्द मानवीय सामर्थ्य से सम्बन्धित है। इससे सिद्व होता है कि राम अपने को केवल मानव ही मानते है क्योंकि ईश्वर की सामर्थ्य तो [illegible] ...लौकिक है।

उनका उदेश्य धर्म की सस्थापना करना और मानवीय मर्यादाओं की रक्षा करना है वे सीता की मर्यादा की रक्षा का श्रेय भी श्रमणा को देते है क्योंकि सीता भारतीय संस्कृति की प्रतीक है उसकी रक्षा करने पर आर्य जाति एवं तीनो लोक आभारी बनाने की बात राम से कहते है। इस कार्य के लिये राम

उनकी आंखो से अश्रु की धारा बह उठती है–

अपन हित को त्याग जगत हित ही अभिधेय तुम्हें,
सीता की मर्यादा की रक्षा का श्रेय तुम्हें है।
हे सुभगे मैं राम वन्दना कैसे करूं तुम्हारी,
मैं ही क्या सब आर्य जाति है लोक तीन आभारी।
दे जीवन सर्वस्व लोकहित, आज परम पद पाया,
राम अकिंचन को तुमने जब व्यापी राम बनाया।

शेष रह गया था वह नयनों की भाषा में गाया।

इस प्रकार राम का चरित्र लोक मानव के रूप में ही उभर कर आदर्श वन गया है।

श्रमणा के राम निः संकोची है वे बिना किसी भेदभाव के खाने के लिए मांग उठते है, वे अपने भूखे होने की बात भी श्रमणा कह देते –

विहंस राम बोले, भामिनि है प्रेम तुम्हारा सूखा,
कुछ खाने को भी तो दो, हूँ जाने कब से भूखा।

यह तो सभी लोग भली भॉति जानते है कि राम ने शबरी के झूठे बेर खाये है, लेकिन इस बात का प्रमाण बाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामायण में नहीं मिलता है फिर भी यहां कवि ने किम्वदन्ती के आधार पर मात्र एक झूठा बेर खाने का उल्लेख किया है। श्रमणा ने चख–चख कर मीठे बेर राम के लिये रखे थे और चखे हुये बेरों का दोना अलग रख दिया था उसी में से अचानक राम ने एक बेर उठा लिया यह एक बड़ा ही मार्मिक प्रसंग है–

जब न बेर कुछ बचे राम ने लखा निकट का कोना।
देखा क्षत विक्षत बेरों का पड़ा दूसरा दोना।
बोले वह भी लाओ भद्रे वे क्यों वहां छिपाये।
होगे और अधिक मीठे वे लगते शुक के खाये।
उठा लिया था स्वयं राम ने अपना हाथ बढ़ाकर
तभी राम का कर पकड़ा था श्रमणा ने अकुलाकर।
प्रभु अनर्थ मत करो , लीक संसृति की मिट जायेगी।
जूठे बेर भीलनी के खाये दुनिया गायेगी।
हुआ महा अध यह मैंने ही चख–चख कर छोड़े थे,
जिस तरू के अति मधुर बेर थे वही अलग जोड़े थे।
किन्तु किसे था मान, प्रेम से तन मन सभी रचा था,
कहते कहते बेर राम के, मुख में जा पहुँचा था।

छुड़ा रही थी श्रमणा, दोना राम न छोड़ रहे थे,
हर्ष विभोर सारिका शुक ने तब यों वचन कहे थे।
जय हो प्रेम मूर्ति परमेश्वर, प्रेम विहारी जय हो,
परम भाग्य शीला श्रमणा भगवती तुम्हारी जय हो।

यहां राम भेद भाव रहित निश्छल प्रेम के प्रतीक रूप में दिखाई देते है। श्रमणा ने वन का सारा वृतान्त राम और लक्ष्मण को सुना दिया और कहा कि आप यहां से किष्किन्धा जाये सुग्रीव और हनुमान से मिले, उनको मैने आपकी सम्पूर्ण योजना भली भॉति समझा दी है वे ना केवल सीता की खोज करा देगें बल्कि रावण के विनाश में भी सेना सहित तन, मन, धन से आपका सहयोग करेगें। यह सुनकर लक्ष्मण भी धन्य–धन्य कह उठे और राम अपने को ऋणी बनाते हुये कह उठते है –

धन्य–धन्य लक्ष्मण बोले रोमान्च राम को आया।
बोले हे श्रमणे ! जन्मों तक मुझकों ऋणी बनाया।
बिना तुम्हारे सचमुच था मेरा व्यक्तित्व अधूरा,
बिना तुम्हारे मेरा भी इतिहास न होता पूरा।

राम श्रमणा से कुछ मांगने को कहते है किन्तु वह कुछ नहीं मांगती और कहती है कि जन्म जन्म तक आपसे मेरा वियोग न हो, इस पर राम कहते है कि यह तो कोई बात मांगने की नहीं है यह तो स्वाभावतयः ही तुम्हें प्राप्त है क्योंकि तुमने ऐसी ही साधना की है। तन से वियोग होना तो अवश्य सम्भावी है सच्चा मिलन तो मन का ही होता है। मन का मिलना ही शास्वत होता है। तत्पश्चात राम ने विस्तार पूर्वक इस तथ्य की विवेचना करके बताया कि अज्ञान ही बन्धन का कारण है। ज्ञान के द्वारा अर्न्तमुखी बनकर उसे आत्म चिन्तन में लगाना है यह मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। नाश्वान शरीर के लिय बहूमूल्य जीवन को केवल सांसारिक भोग

विलास मे विता देना ऐसा है जैसे सुमेर सोने के पहाड़ को त्याग कर कोई कंकड़ो से मन वहलायें। संसार की सारी वस्तुयें इन्द्रिय क्षमता तक सुख देने वाली होती है इन्द्रियों की क्षमता नष्ट होने पर वे सब दुखदायी बन जाती है। सुख के पहले भी दुख होता है और बाद में भी, मन का जो अहंकार है वही रथ है और बुद्धि ही अश्व है, चित्त ही उसकी लगाम है, उस रथ का सारथी यह मन ही है, इस रथ में परमात्मा का अंश जीवात्मा बैठी है मन सारथी है, बहुत चंचल है वह सूक्ष्म आत्मा को अपने विकारों के रथ में बैठा कर भटकाता रहता है। मनुष्य को विवेक द्वारा स्वयं का चिन्तन करना है तभी उसे अपने अन्दर की आत्मा का दर्शन होगा। ऐसा करने से आत्मा पर जो तन का आवरण पड़ा हुआ है वह नष्ट हो जायेगा। उसके नष्ट होने से सभी जगह आत्मा अर्थात् स्वयं ही दिखाई पड़ेगा फिर वियोग किसका और किस से होगा। इस प्रकार यह लौकिक आनन्द अलौकिक में बदल जायेगा यही मोक्ष है, यही सामरस्य है, यही एक एकाकार है और यही परमानन्द का सार है। इस प्रकार सब प्रकार की कामनाओं की मुक्ति हो जाती है। राम का यह महत्वपूर्ण आत्मज्ञान सुनकर श्रमणा का चित्त शान्त हो गया था उसको परम शान्ति प्राप्त हो चुकी थी आँखो से आनन्द की अश्रु धारा बहने लगी थी वह कह उठा –

बोली देव हो गया मेरा आज जन्म तप सारा,
मैंने अभी अभी उर अन्तर में ही तुम्हें निहारा।
राघव अब तुम नहीं वहां से कभी निकल पाओगे,
नयन मूदने पर भी अब तुम मुझको दिख जाआगे।
सचमुच जो सोचा था वह सब कुछ भूल गई में,
हुआ मुझे आभास बन गई शास्वत नयी नयी में।
मुझे हुआ विश्वास देव यह मिलन अनन्द रहेगा,
इस संयोग कथा को युग युग सारा जगत कहेगा।

उपरोक्त ज्ञान राम श्रमणा को दिया यह बीसवें सर्ग के पृष्ठ 309 से 313 तक बहुत ही मार्मिक और महत्वपूर्ण है इसमें अध्यात्म योग और दर्शन का सम्पूर्ण रूप से एक साथ समावेश हो गया राम ने अपने विशाल ज्ञान और अनुभूतियों से सांसारिक मोह नष्ट कर दिया यहां राम ज्ञान के अपार भण्डार दिखाई देते है, उनके आध्यात्मिक ज्ञान की चरम सीमा दृष्टिगोचर होती है, वे पूर्ण ज्ञानी के रूप में प्रस्तुत हुये है इसी सर्ग के अंत में श्रमणा के पूछने पर वे जटायु का भी परिचय देते है और उसके आत्म बलिदान की प्रशंसा करते है। अपने को अनेक लोगो का ऋणि मानकर उस ऋण को चुकाने का व्रत लेते है–

मेरे लिये उन्होंने सुभगे अपना प्राण गँवाया,
थे पहले से पिता ऋणि, अब मुझको ऋणि बनाया।
जाने किस किस का कितना ऋण है मुझ पर धरती का,
किन्तु चुका दूँगा मैं सारा, है प्रण राम व्रती का।
श्रमणा बोली निश्चय ही प्रभु ऋण सब चुक जायेगा,
अहा जटायु कैसी जग में कौन मृत्यु पायेगा।
पर हित में आये जो जीवन वह जीवन जीवन है,
स्वार्थ पूर्ति में पशुओं का भी, क्या कम उदाहरण है।

इक्कीसवां सर्ग श्रमणा महाकाव्य का अन्तिम सर्ग है। यह सर्ग महाकाव्य का उपसंहार भी है। श्रमणा राम से केवल यही वरदान मांगती है कि मैं सदैव मनुष्य योनि में जन्म लेकर आपके चरित्र का ही अनुसरण करती रहूँ क्योंकि आपका चरित्र का अनुसरण करने पर बिना ही यज्ञ, जप, तप, के सांसारिक जीवन आसानी से निर्वाह करके महान बन सकता है। राम मानव को सर्वश्रेष्ठ बताते हुये उसे परमात्मा का ही पर्याय मानते है। ब्रह्म मानव का रूप रखकर इसलिये आता है कि वह उसका अनुसरण करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करें। यहां राम अपने को सामान्य मनुष्य बतलाकर

कहते है कि पुरूषार्थ के द्वारा देवताओं की कोटि में आ सकता है वे सीता और लक्ष्मण को अपना सहयोगी न मानकर अपने कर्तव्य में बाधक ही मानते है किन्तु मनोबल को सबल बताते हुये अपने उददेश्य में सफल होने के बात कहते है वे यह सिद्ध कर देना चाहते है कि मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है—

विहंस राम बोले भद्रे तव शुचि भावना रही है,
मनुज योनि से सुन्दर जग में कोई योनि नहीं है।
जीव मात्र में ब्रह्म—ब्रह्म का रूप जीव ही जानो,
इसलिये जो मुझे ब्रह्म कहते वह सच ही मानो।
किन्तु ब्रह्म के मनुज भाव का वस यही प्रयोजन,
करे अनुसरण मनुज, स्वयं की करें प्रगति सम्बर्धन।
मुझे न जानो राजपुत्र, या मुझे देव मत मानो,
तुम सब की ही भॉति मुझे सामान्य मनुज ही जानो।
पूर्व कर्म वश चक्रवर्ति के गृह में जन्म लिया है,
राज्य त्याग, गृह त्याग श्रमण मैनें इसलिये किया है।
जग को दिखला दूँ साधन से हीन दीन मानव भी,
दृढ़ संकल्प साधना बल पर डर सकता दानव भी।
नर पुरूषार्थ करे तो यश वैभव सब पा सकता है,
उभय लोक देवो की श्रेणी में आ सकता है।
तापस वेष विशेष उदासी बन निर्जन में आया,
मानव को दैवत्व दिलाने का चरित्र में लाया।
लक्ष्मण सीता भी हठ वश सहयोगी भले बने है,
लेकिन इनके कारण मुझको संकट और घने है।
पत्नि का हो गया हरण अब लघु भाई की चिन्ता,
सब कुछ यहां अपरचित, वन में कुछ भी नही सुभीता।
किन्तु न मैं विचलित हूँ, मेरा मन बल सदा प्रबल है,

निश्चय ही समझो सुभगे मेरा उददेश्य सफल है।
ईश्वर की है सर्व श्रेष्ठ कृति मनुज सिद्ध कर दूँगा,
रहा प्रयत्नशील अब तक आगे भी सदा रहूंगा।

राम आर्दश जीवन के लिये मनुष्य में नौ गुणों की अपेक्षा करते है बृह्मचर्य, व्यायाम, बृह्म मुहुर्त में उठना, संध्या वंदन, नियमित दिनचर्या, सात्विक भोजन, शिष्टाचार, व्यसनों का नियोजन और समय का सद्पयोग इन नौ गुणों का पालन करने पर जीवन में लाभ और आत्म कल्याण शीघ्र प्राप्त हो सकता है। महापुरूष वही है जो अपनी अपराधी से भी बदले की भावना न रखें यह आदर्श कठिन तो होता है किन्तु मनुष्य को सदैव प्रत्यनशीन रहना चाहिये।

अमृत नहीं मिल पाता है तो विष भी तो मत खाओं।
अभी प्रात के संशय में तुम रात न विकृत विताओं।
दिवस प्राप्त के हेतु न निशि का यदि उपयोग करोंगे।
तो निश्चय ही स्वर्ण दिवस में प्रबल प्रमाद भरोगें।
सत्य स्वयं का लख न सके तो क्यों असत्य पकड़े हो,
कुसंस्कार दुर्बलता अंधी श्रद्धा में जकड़े हो।
उठो और जागो चकमक से स्वयं आग प्रकटाओ,
हर स्फुलिंग अंश है रवि का, उगो सूर्य बन जाओ।
श्रमणे ऐसे आप्त पुरूष उपदेश दिया करते है,
आत्म ज्ञान जाग्रत कर अज्ञान तिमिर हरते है।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाकाव्य राम के पराक्रम, शौर्य और आदर्श चरित्र से ओत प्रोत है इस महाकाव्य में सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं उदात्त भावनाये उभर कर आ गई हैं। श्रमण महाकाव्य के नायक, राम लोकोपकारी तथा वीरतापूर्ण साहसी कार्यो से परिपूर्ण है वे लोक सेवा का वीड़ा लेकर चले और अपने

निश्चय ही समझो सुभगे मेरा उददे्श्य सफल है।
ईश्वर की है सर्व श्रेष्ठ कृति मनुज सिद्ध कर दूँगा,
रहा प्रयत्नशील अब तक आगे भी सदा रहूंगा।

राम आर्दश जीवन के लिये मनुष्य में नौ गुणों की अपेक्षा करते है बृह्मचर्य, व्यायाम, बृह्म मुहुर्त में उठना, संध्या वंदन, नियमित दिनचर्या, सात्विक भोजन, शिष्टाचार, व्यसनों का नियोजन और समय का सद्पयोग इन नौ गुणों का पालन करने पर जीवन में लाभ और आत्म कल्याण शीघ्र प्राप्त हो सकता है। महापुरूष वही है जो अपनी अपराधी से भी बदले की भावना न रखें यह आदर्श कठिन तो होता है किन्तु मनुष्य को सदैव प्रत्यनशीन रहना चाहिये।

अमृत नहीं मिल पाता है तो विष भी तो मत खाओं।
अभी प्रात के संशय में तुम रात न विकृत विताओं।
दिवस प्राप्त के हेतु न निशि का यदि उपयोग करोंगे।
तो निश्चय ही स्वर्ण दिवस में प्रबल प्रमाद भरोगें।
सत्य स्वयं का लख न सके तो क्यों असत्य पकड़े हो,
कुसंस्कार दुर्बलता अंधी श्रद्धा में जकड़े हो।
उठो और जागो चकमक से स्वयं आग प्रकटाओ,
हर स्फुलिंग अंश है रवि का, उगो सूर्य बन जाओ।
श्रमणे ऐसे आप्त पुरूष उपदेश दिया करते है,
आत्म ज्ञान जाग्रत कर अज्ञान तिमिर हरते है।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाकाव्य राम के पराक्रम, शौर्य और आदर्श चरित्र से ओत प्रोत है इस महाकाव्य में सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं उदात्त भावनाये उभर कर आ गई हैं। श्रमण महाकाव्य के नायक, राम लोकोपकारी तथा वीरतापूर्ण साहसी कार्यो से परिपूर्ण है वे लोक सेवा का वीड़ा लेकर चले और अपने

कार्य में जुट गये। उन्होंने अन्याय को दूर करके न्याय की स्थापना करने का कार्य भार उठाया वह साहसी और वीर है। सहृदय और नीतिज्ञ है राम आत्मबल का प्रभाव परिलक्षित होता है वे परम्परावादी है, उनके गुणों में युगानुकूल परिवर्तन है। श्रमणा महाकाव्य के राम परम्परागत रूप लेते हुये वर्तमान लोकभूमि पर अधिक खरे उतरे है। कविवर अवधेश जी ने राम के चरित्रांकन में नूतन कल्पना और प्रतिभा से काम लिया है इस माध्यम से श्रमणा महाकाव्य वर्तमान युग की विचारधाराओं को एक नवीन रूप देने का प्रयास करता है। प्रश्न उठता है कि राम क्या श्रमणा महाकाव्य के नायक है इसका निर्णय इस प्रकार होता है कि सिवाय बीसवें–इक्कीसवें सर्ग के कहीं भी प्रत्यक्ष रूप में नहीं आये। उनका वृतान्त अनेक लोगो ने श्रमणा को बतलाया है, दूसरे न तो उनके जन्म की कथा है और न अवसान की। वे प्रायः अन्य पुरूष के रूप में ही प्रयुक्त हुये है उन्हें फल की भी प्राप्ति नहीं हुयी है उनका नेतृत्व भी नहीं आया है इसलिये राम को महाकाव्य का नायक माना जाना उचित नहीं है।

श्रमणा (शबरी) नायिका :

श्रमणा, महाकाव्य की नायिका है बाल्मीकि रामायण, तुलसीकृत रामायण एवं अन्य रामायणों में श्रमणा का चरित्र अति संक्षिप्त रूप से मिलता है पद्य पुराण एवं ब्रह्म वैवर्त्य पुराण में भी संक्षिप्त कथा है। पुराणों की कथा में शबरी की कथा विवाह से प्रारम्भ होती है। विवाह में पशु पक्षियों को मारकर भोजन व्यवस्था की बात जब शबरी को मालूम होती है तो वह घर छोडकर भाग जाती है और मतंग ऋषि के आश्रम में पहुँच जाती है मतंग ऋषि ने शरीर छोडने के समय कहा कि राम आयेगें तुम उनकी प्रतीक्षा करना। वे तुमसे अवश्य मिलेगें। शबरी शबर की कन्या थी बस इतनी ही कथा पुराणों में मिलती है इस संक्षिप्त कथा को श्रमणा महाकाव्य में युक्ति

युक्त विस्तार दिया है। इसमें रचनाकार की दो समस्याओं का निराकरण दिखाई पड़ता है, एक तो नारी जाति का उत्थान जो युगों–युगों से उपेक्षित चली आ रही थी, दूसरे हेय जाति के उत्थान की अपेक्षा थी। यह बात कवि को खटकती थी क्योंकि परावर्ती कवियों ने भी इस ओर ध्यान आकर्षित कराया था। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी ''कात्येर उपेक्षिता'' नामक निबन्ध में उर्मिला के बारे में लिखा था।

'' हाय – अव्यक्त वेदना भेदी उर्मिला एक बार तुम्हारा उदय प्रातः कालीन तारा की भॉति महाकाव्य के सुमेर शिखर पर हुआ था तदुपरान्त अरूण लोक में तुम्हारे दर्शन न हुये। कविवर अवधेश जी ने इन्हीं नारियों से प्रेरित होकर एक ऐसी नगण्य और उपेक्षिता नारी पात्र शबरी को उभारने का प्रत्यन किया है और उसे महाकाव्य की नायिका के रूप में प्रस्तुत किया। श्रमणा (शबरी) पूर्णतः पौराणिक शबरी न रहकर एक उदात्त चरिता, प्रेममूर्ति, कर्तव्य भावना, लोक कल्याणी के रूप में प्रस्तुत हुयी। इस प्रकार इस महाकाव्य में श्रमणा का चरित्र सामान्य नारी के रूप में अंकित करके पूर्व प्रचलित परम्परा में एक नवीन मोड़ दिया कवि ने श्रमणा के जन्म से ही कथा का शुभारम्भ किया है –

उन्हीं के गृह जो कि थे सबविधि सबल सम्पन्न।
शाप मोचन हित हुई देवांगना उत्पन्न।
साधना बनकर धरा पर आगई साकार।
प्रेम की प्रतिमूर्ति बनकर भक्ति का अवतार।
सब सुलक्षण युक्त मनहर रूप रंग अनूप।
था अलौकिक बालिका का भी अलौकिक रूप।
दोहा–शवर सुता के जन्म के, है यो विविध विचार।
किन्तु कहा मैने उसे, निजमति रूचि अनुसार।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य की श्रमणा अतीत और वर्तमान की कड़ी जोड़ने में समर्थ हुयी है जिस प्रकार प्रिय प्रवास में राधा का चरित्र हरिऔध में उभारा है उसी प्रकार श्रमणा का भी चरित्र बहुमुखी प्रतिभावान है। राधा और श्रमणा में कवि ने एक स्थान पर तुल्यता दिखाई है दोनो के प्रेम की तुलना की है –

एक द्वापर एक त्रैता की अनन्य प्रतीक,
प्रेम की खीचीं जिन्होंने अमिट उज्जवल लीक।
प्रीति शबरी और श्यामा की अतुल्य प्रमाण,
देह में अटके रहे वस प्रिय मिलन को प्राण।
तुल्यता में कौन किसमें है महान महान,
कौन कहकर दे स्वयं को अल्प बुद्धि प्रमाण।
श्रमणा श्यामा को समझ कर यों समान समान,
युगल के चरणोविन्दों में लगाता ध्यान।
युगल के प्रेमास्पदों का रम्य श्याम स्वरूप,
किन्तु यह पद एक श्यामल, एक गौर अनूप।
ध्यान सर गम्भीर है, घृति वायु वेग समेत,
देखता हूँ मिल गये युग कंज श्यामल श्वेत।
मैं सफल कृत हो सकूँ बस है यही अभिलाष,
विश्व सारा प्रेम का ही रूप हो आभास।
सत्य कर दें श्रमणा श्यामा बाल कृत्य विशेष,
हो मुदित अवधेश पर अवधेश और ब्रजेश।

इन दोने की तुल्यता अवश्य है लेकिन रूप रंग में अन्तर है राधा गौरवर्ण है तो श्रमणा श्याम वर्ण है इसी प्रकार इनके प्रेम में भी अन्तर है राधा का प्रेम कृष्ण के प्रति लौकिकता को लिये हुये है। वह कृष्ण से दैहिक सानिंध्य भी चाहती है दूसरे वह परकीया (विवाहिता) भी है दोनो एक दूसरे

से आकर्षित भी होते है और प्रायः मिलते भी है किन्तु श्रमणा सर्वथा पवित्र प्रेम की चाहत है वह आजन्म ब्रह्मचारिणी रही, राम से उसका सर्वथा वियोग रहा उसका प्रेम राम के प्रति सात्विक एवं एकांगी है राम से उसका मिलन एक ही बार होता है वह केवल दर्शन मात्र से लौकिक प्रेम से तिरोहित हो जाती है श्रमणा विवाह नहीं करना चाहती केवल दर्शन की अभिलाषा लिये है और चाहती है कि हम उनके बन जाये इतने में ही तुष्टि है –

बोल उठी श्रमणा मैंने कब,कहा उन्हें हम पाये,
वे न हमारे बनें किन्तु हम तो, उनके बन जाये।
माँ ईश्वर को किसने देखा, किन्तु पुष्टि होती है,
और सदा उसके भक्तों की, नित्य तुष्टि होती है।
माँ संकल्प सुदृढ़ है मेरा, मैं न विवाह करूँगी,
एक आस विश्वास एक बल पर निर्वाह करूँगी।

इस प्रकार श्रमणा की भावना पूर्ण सात्विक है वह राम से मिलना चाहती है किन्तु नेत्रों के द्वारा नहीं। राम के महत्त संकल्प की पूर्ति के लिये कुछ कर्म करके मिलना चाहती है। निम्न पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है–

श्रमणा बोली वाले मिलने का यह अर्थ नहीं है,
आँखों से दर्शन करने का अर्थ समर्थ नहीं है।
उनकी रूचि अनुरूप कर्मधन कुछ तो संचित कर लूं,
कर लूं कर्तव्य, मिलन अधिकार तनिक तो भर लूं।
सिद्धान्तों का नहीं, कर्म व्यवहार चाहिये उनको,
मानवता का मानवता से प्यार चाहिये उनकों।
वे मांगेगे भेंट भला में, तब क्या उत्तर दूँगी,
इस अमूल्य तन से न किया कुछ, क्या व्यंग सुनूगी।
राम कहे न कहें, किन्तु हमको कुछ करना होगा,

सन्मुख कुछ उपहार स्वकर्तव्यों का धरना होगा।
यही सोचती हूँ कि दूसरों के हित जिऊं मरूंगी,
उनका वर उददेश्य पूर्ति करके ही उन्हें मिलूंगी।

इस प्रसंग में राधा ही एक ऐसी पात्र है जिसकी तुलना श्रमणा से की जा सकती है किन्तु उपर दिये हुये संदर्भो से ज्ञात होता है कि श्रमणा का चरित्र अपने में अनूठा और अतुलनीय है। साकेत की " उर्मिला " यशोधरा की " यशोधरा " और कामायनी की नायिका " श्रद्धा " से श्रमणा की तुलना करना उचित नहीं है। इन चारो नारियों से श्रमणा का चरित्र अधिक पवित्र, वासना रहित उज्जवल और लोक हितैषी है। उसने सारा जीवन केवल दूसरो के लिये जिया है उसकी तुलना में अन्य नारियां नहीं ठहरती है।

जहॉ तक महाकाव्य की नायिका का प्रश्न है, श्रमणा ही महाकाव्य की नायिका उचित ठहरती है क्योंकि सम्पूर्ण महाकाव्य में जन्म से लेकर समापन तक पूरा जीवन चरित्र आ गया। सम्पूर्ण कथानक की केन्द्र बिन्दु श्रमणा है, पूरे महाकाव्य में श्रमणा का ही व्यक्तित्व एवं कर्तव्य दिखाई पड़ता है, उसकी आशा, प्रत्याशा, प्रत्यन श्रमणा महाकाव्य में विद्यमान है। उसको फल की प्राप्ति हो जाती है यह सम्पूर्ण लक्षण नायक के लिये आवश्यक है जो श्रमणा पर भली भॉति खरे उतरते है, अतः कहा जा सकता है कि श्रमणा महाकाव्य नायिका प्रधान महाकाव्य है। जिसकी श्रमणा नायिका है राम उपनायक या सहनायक है।

श्रमणा का चरित्र–चित्रण

महाकाव्य की नायिका श्रमणा में युगानुकूल अनेक गुण, कर्म और स्वाभाव के रूपों का चित्रण मिलता है। भक्ति काल के कवियों द्वारा शबरी केवल भक्त के रूप में प्रतिपादित हुई है किन्तु अवधेश जी ने श्रमणा के

चरित्र में आधुनिक युग की मान्यताओं एवं आदर्शो के अनुकूल परिवर्तन किये हैं। इसमें श्रमणा के अनेक रूप देखने को मिलते हैं।

1. अहिंसा धर्मिणी श्रमणा : श्रमणा महाकाव्य के द्वितीय और तृतीय सर्ग में श्रमणा का अहिंसा के प्रवर्तक के रूप में बड़ा ही मार्मिक चरित्र–चित्रण किया गया है। वन के पशु पक्षी सहज ही उससे प्रेम करते थे, सभी उसके साथ क्रीड़ा में संलग्न रहते थे शबर की कन्या होते हुये भी वह मद्य और मास का प्रयोग नहीं करती थी। उसके सहचर्य में मासाहारी वन्य पशु पक्षी भी निरमिष बन गये थे।

> वन पशुओं के मधुर दुग्ध, मिश्रित मेवे के दोने,
> कर में लेकर खाती थी संग, खाते थे मृग छोंने।
> भिन्न–भिन्न बोलियां बोलकर, विहंग बुला लेती थी,
> एक पंक्ति में बिठा सभी को, समुद्र खिला देती थी।
> हरिण चुगाने हरित दूर्ब दल, चुन चुन नित्य संजोती,
> नित्य नियम से चुगने आते, शुक सारिका कपोती।
> शवर प्रवर घर मद्य–मांस का, यदपि अभाव नहीं था,
> पर श्रमणा के मन पर उसका, रंच प्रभाव नहीं था।
> उसके सहचर बनचर, जितने जीव जन्तु पशु पक्षी,
> वह भी सब वन गये निरामिष, जो थे आमिष भक्षी।
> सरल बालिका के स्वभाव में ही समभाव भरा था,
> इस से जड़ चेतन में उसके, हित चित चाव भरा था।

बालिका श्रमणा ग्रीष्म ऋृतु में वन पशुओं के साथ वट वृक्ष के नीचे खेल रही थी। वह मृग शावक के साथ सो गयी थी, पिता ने भय वश वन से हटाने के लिये तीर चलाया तो वह श्रमणा का करतल वेदता हुआ हिरण

के शावक में लगा इससे उसकी मृत्यु हो गई। श्रमणा इस पर पिता का उलाहने देती हुई कहती है –

> पशु है तो क्या इसको भी, माँ का वात्सल्य मिला है,
> इसको भी तो एक अभागिन माँ का हृदय मिला है।
> पशु है तो क्या प्रेम प्रथा के, सभी एक नाते है,
> आप मनुज है इसलिये इसको छोड़े जाते है।

इसी प्रसंग में अहिंसा पर बल देते हुये तार्किक भाषा में पिता को समझाती है –

> कहने लगी तात क्या मेरी बात सुनेंगे मन से,
> प्राण किसी के तोले जा सकते, क्या तन मन धन से।
> निरपराध जीवों का वध, जो आप किया करते है,
> दुष्ट कर्म से आप, पाप का घट नाहक भरते हैं।
> मिला सबल को बल, केवल निर्बल को बल देने को,
> न कि निरीह निर्बल का बल से निबल प्राण लेने को।
> वचन आप क्या देगें मुझको उसे न बध करने का,
> मैं दे आई वचन उसे तुमसे न कभी डरने का।

श्रमणा के इस तर्क के सामने शबर पिता को पराजित होना पड़ा उसने घोषणा कर दी अब किसी की हिंसा नहीं की जायेगी। हिंसक शबर सेन श्रमणा के कारण ही अहिंसक बन गया।

> पुत्रि उसे ही नहीं किसी का, वध न कभी अब होगा,
> तेरी ही अभिलाषा के, अनुकूल कार्य सब होगा।
> तब मुख से ही विधि ने मुझे को यह उपदेश दिया,
> मेरी ही उद्धार हेतु प्रिय, तुमने जन्म लिया है।
> समझ गया हूँ आज मर्म में, हे ध्रव धर्म अहिंसा,

कभी सुनी थी मुनि नारद से जिसकी परम प्रशंसा।

इससे श्रमणा क्रोधित होकर अपने पिता को भला बुरा कहती है और पिता को इस बात पर राजी करती है कि आज के बाद किसी भी पशु पक्षी की हिंसा नहीं की जायेगी। हिंसक शबर सेन अब अहिंसक बन गया। इस प्रकार श्रमणा केवल अहिंसावादी विचारधारा की नहीं बल्कि अहिंसा की देवी के रूप में प्रस्थापित हुई है।

2. रूप यौवना श्रमणा : श्रमणा अब किशोरावस्था से यौवना वन गई थी। उसका सौन्दर्य और लावण्य छलक सा रहा था। वह अप्रतिम सुन्दरी थी, उसके तन और मन की परिभाषायें अब बदल गई थी, नई कल्पनायें प्रखर बुद्धि में आने लगी थी–

वय के साथ लगी थी बढ़ने दम्पति की आशायें,
श्रमणा की मन अभिलाषाये, तन की परिभाषायें।
श्यामल तन पर झलक उठी थी यौवन की अरूणाई,
रवि आभा पर नील कमल दल जैसे पडे दिखाई।

ऐसा प्रतीत होता था कि माता का यौवन और पिता का ओज रूपवती श्रमणा में साकार हो गया हो। वह आजानु वाहु थी, वह रूप, शील, धैर्य, साहस आदि गुणों से परिपूर्ण थी पद्यनि नायिका की भांति उसके देह से कमल की सुगन्ध आ रही थी, चपलता समाप्त हो चुकी थी, उसका गुण रूप और शील पृथ्वी पर फेलने लगा था।

रूप और लावण्य से सिमिटकर एकाकार हुआ था,
ओज पिता का, माँ का यौवन फिर साकार हुआ था।
पीन नितम्ब, वक्ष उठता सा कटि ने जोड़ा ऐसे,
कामदेव ने अंक चार का लिखकर छोड़ा जैसे।
किसी अलौकिक महाप्रभा का परिचय सा वतलाती,

लोल गोल कोमल युग बाहें जानु मूल तक जाती।
कसे हुये थे कंचुकि के सांचे में वक्षज उरके,
मानो कलश जा रहे ढाले, यौवन के मन्दिर के।
रूपशील, सौन्दर्य, धैर्यता, साहस की प्रतिमा सी।
ज्ञान, स्नेह, यश, नीति, निपुणता, पावन दया क्षमासी।
पद्य गंध प्रस्सृत सुदेह, विहंसनि द्वित वर दामिन सी,
मन्द मन्द गति गमन हुई, अनुगामिन गज भामिनी सी।
सुगंठित सुन्दर पुष्ट देह में कोमल हृदय पला था,
श्रमणा का गुणरूप शील, वसुधा का उमड़ चला था।

3. राम की प्रेमाभक्ति रूप में: मारीच के द्वारा पहली बार श्रमणा को राम का परिचय मिला। उसके पृष्ठ भाग से खींचे हुये वाण पर राम का चित्र बना था बचपन में नारद के द्वारा राम का थोड़ा सा परिचय मिला था किन्तु उसने चित्र रूप में राम के दर्शन किये और तभी से वह राम से परिचित होकर उनकी आराध्या बन गई–

बिन फर के सर अग्रभाग पर अति लघु चित्र दिखा था,
अवधराज युवराज राम का जिस पर नाम लिखा था।
सुन्दर नाम, चित्र अति सुन्दर, सायक पर उभरा था,
जिसकी गहरी रेखाओं में स्वर्ण पराग भरा था।
यही राम है जिनका यश नारद ने पितु से गाया,
जिसको कभी पिता ने शैशव में था मुझे सुनाया।
नाम किया जिह्वा पर अंकित, मूर्ति हृदय में आंकी,
आँखो की समक्ष खिंच आई वह शैशव की झांकी।
लगा हृदय से तीर प्रेम में श्रमणा मग्न हुयी थी,
सुनकर करूण कराह कल्पना मन की भग्न हुयी थी।

आगे श्रमणा मारीच के द्वारा सम्पूर्ण परिचय राम का प्राप्त करती है। उसके हृदय में राम के लिये अमिट राग उत्पन्न हो जाता है। वह राम का स्वप्न देखती है –

परिचय सुना आपके द्वारा, चित्र वाण पर देखा,
जाने क्यों खिच गई हृदय में अमिट राग की रेखा।
आज स्वप्न में दिया उन्होंने मुझको निज, संरक्षण,
मैं भी अपना सब कुछ खोकर हुई, उन्हीं को अर्पण।
वह अपना दृढ़ निश्चय कह उठती है–
उनको पाकर ही अपना सौभाग्य मना लूंगी मैं,
अपने को उनकी इच्छा अनुकूल बना लूंगी मैं।

श्रमणा राम का कल्पित चित्र बनाती है और मन की कल्पना में खो जाती है।

विशिख–चित्र से विशद राम का कल्पित चित्र बनाती,
मन की स्वयं कल्पनाओं में खोकर कभी लजाती।

इस प्रकार श्रमणा राम की आराधिका वन जाती है। और हृदय में राम के प्रति प्रेम का अंकुर भी पनपने लगा है। वह राम के आने की बाट देखती रहती है और वह बड़ी व्याकुलता से राम की प्रतीक्षा कर रही है–

दिवस प्रतीक्षा में श्रमणा ने फिर इस भांति बिताये,
कोई ज्यों कह रहा द्वार से, राम तुम्हारे आये।
शुष्क पल्लवों की आहट से, सहज चौंक जाती थी,
बाहर से भीतर, भीतर से फिर बाहर आती थी।
कोल भील वनचारी रिषि मुनि पथिकों को ठहराकर,
पूछा करती थी परोक्ष प्रत्यक्ष रूप से जाकर।
पता न पाकर कहीं विकल सोचा करती थी मन में,

लौट गये क्या राम अवध को अब न आयेंगे वन में।
प्रथम बार जीवन में उनको अपना हृदय दिया है,
जीवन भर को अपना जीवन अर्पित उन्हें किया है।
यदि वह आये नहीं, धरोहर भला किये दूँगी मै,
इन नयनो को तृप्त किये बिन कैसे जी लूँगी मैं।
एकबार भर नयन देखलें, है वस यह अभिलाषा,
एकबार भर नयन देखलें, हैं बस यही पिपासा।

श्रमणा को जड़ और चेतन में सर्वत्र राम दिखाई पड़ते है। जब तक उसका साक्षात्कार राम से नहीं होता तब तक वह उनके बारे में प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कहती। अप्रत्यक्ष रूप से वह उन्हें प्रियतम के रूप में चाहती है किन्तु श्रमणा क्वांरी है। राम मर्यादित पुरूषोत्तम है इसलिये वह युक्ति के साथ कहती है।

तू जगपति है मैं जग में हूँ, मेरा भी तू पति है।
किन्तु न जाने क्यों मेरे मन में रघुपति की रति है।
यदि इसमें कोई त्रुटि हो तो क्षमता मांग लूँगी मैं।
और उन्हें ही पा जाने में तुम को भी पा लूँगी मैं।

विशेष : उपरोक्त पंक्तियों ने कवि ने शिलष्ट भाषा में पति का रूप देकर राम और श्रमणा की मर्यादा की रक्षा की है। श्रमणा राम के प्रेम रंग में रंग चुकी है वह किसी से ब्याह नहीं करना चाहती है वैराग लेना चाहती है क्योंकि उसके अराध्य राम" तापस वेष विशेष उदासी " के रूप में वन में आये है। श्रमणा विश्वामित्र से पूछती है मैं अधम जाति की नारी हूँ, अल्पज्ञा हूँ क्या राम को पाना सम्भव है?

अधम जाति की मैं नारी हूँ लोक दृष्टि से हीना,
अल्पज्ञा हूँ अति आर्ता हूँ, सब प्रकार से दीना।

है मेरी अभिलाषा, राम को कभी किसी विधि पाऊँ,
किन्तु न उनकी मानव मर्यादा में छिद्र बनाऊँ।
क्या सम्भव है देव असम्भव सम्भव हो सकता है,
उनका विरूद्ध वारि क्या मेरी, लघिमा धो सकता है।

विश्वामित्र उसे आश्वस्त करते हुये आशीर्वाद देते है। श्रमणा अपने को राम की अनुचरी मानते हुये भी राम के जग मंगल लक्ष्य को पूरा करना चाहती है। हनुमान से वह कहती है–

राम अनुचरी हूँ उनका अभिधेय पूर्ण करने को,
त्याग दिया है यह जग, जग में ही मंगल भरने को।

वह इस कार्य के लिये किष्किन्धा के जनगण का सहयोग भी चाहती है –

मैं जो व्रत लेकर निकली सहयोग चाहिये उसमें,
किष्किन्धा का तन मन धन उपयोग चाहिये उसमें।

उसके आदर्श विन्दु राम ही वह उनसे मिलना चाहती है और सूर्पनखा से कहती है–

समुखि अवध युवराज राम आदर्श बिन्दु हैं मेरे,
इस जग की पूर्णिमा निशा के पूर्ण इन्दु हैं मेरे।
उनसे ही मिलने की अभिलाषा लेकर निकली हूँ,
जिस पथ पर वे मिले, उसी पथ पर मैं स्वयं चली हूँ।

श्रमणा राम से मिलने के लिये आतुर है किन्तु उनको अपने समकक्ष नहीं पाती है। परन्तु उसका संलल्प दृढ़ है। वह भी अपने नारीत्व का स्वाभिमान रखना चाहती है–

सब कुछ हूँ नारी हूँ तो नारी का स्वत्व धरूंगी,
करती हुई प्रतीक्षा उनकी निज कर्तव्य वरूंगी।
देखें कौन जीतता है वे, या मैं ही जीतूंगी,
एकाकी भी प्रेम विजित होता है, यह देखूंगी।

सुतीक्षण के द्वारा मालूम हुआ कि राम अब पंचवटी में आ चुके है, शीघ्र ही मिलेगे। मारीच बतलाता है कि सीता का हरण हो गया है राम उन्हें ढूढ़ते हुये यहां अवश्य आयेंगे यह सुनकर वह हर्ष विभोर हो जाती है और मिलन सुख की अनुभूति करती है–

कोई मन में साध नहीं है, कैसे मैं कह दूंगी,
वह अद्वत सौन्दर्य लघु दृगों में कैसे भर लूंगी।
कहना तो बहुत किन्तु मैं कैसे कह पाऊंगी,
महापुरूष उनके सम्मुख कैसे जाऊंगी।
सुना प्रेमियों की होती है अलग मूक ही भाषा,
वे नयनो से ही पढ़ लेते है मन की अभिलाषा।
कुछ न कहूंगी मैं प्रभु के चरणों में गिर जाऊंगी
पद स्पर्श पा सफल कृत्य हो परम तृप्ति पाऊंगी।

श्रमणा राम के दर्शन करना चाहती है और सम्पूर्ण सम्पूर्ण सन्देश देकर अपने कर्तव्य से मुक्ति पाना चाहती है। वह प्रतिदिन पुष्प वृक्षों को सीचती है ताकि उनके आने पर पुष्प कम न पड़ जायें –

एक बचा था पम्पसारका सन्देशा देने को,
अब तो कुछ भी कार्य न था श्रमणा को कर लेने को।
राम पधारे, कह उनसे कर्तव्य मुक्ति मैं पा लूँ,
नेत्र तृप्त कर पद रज लेकर जीवन सफल बना लूँ।

श्रमणा का वियोग अन्तिम सीमा पर पहुंच गया था। तन उसका क्षीण हो चुका था मन की संकल्प शक्ति बढ़ गयी थी और कुछ निराश भी हो उठी थी। इस असह वेदना को श्रमणा न सह न सकी वह मूर्छित हो गयी। सच्चे प्रेमी और सच्ची प्रेमिका की सम्वेदना का तार जुड़ जाता है। राम को इसका आभास हो गया था और वे दौड़कर श्रमणा के आश्रम पहुंच गये। मूर्छित श्रमणा को राम ने चेतना दी, श्रमणा ने नेत्र खोले तो राम के दर्शन हुये श्रमणा व्याकुल होकर उनके चरणों से लिपट गई उसके नेत्रों से लगातार अश्रुधारा वह रही थी–

हुई आज साकार हृदय में जो अतीत से आंकी,
देखी सुरूचि पूर्ण नयनों से भव्य राम की झांसी।
आतुर गति से उठ चरणों में मस्तक शीघ्र लगाया,
बोली श्रमणा इन चरणों ने मुझे अधिक तरसाया।
अब तो विलग नहीं होगे, हे नाथ मुझे बतलाओ,
बोलो बोलो देव मौन रहकर मत व्यथा बढ़ाओ।
ऐसा कह फिर लिपट गई थी श्रमणा श्री चरणों से,
निरख रही थी वार वार मुख द्रंग भर अश्रु कणों से।
हर्ष वेदना भरी अश्रु की धार नहीं रूकती थी,
कभी कमल मुख निरख कभी पद कंजो पर झुकती थी।

श्रमणा राम के समीप वेसुध होकर नृत्य कर रही थी और राम भी अन्र्तमोहित होकर श्रमणा को अपलक दृग से देख रहे थे। दोनो तन से विलग थे किन्तु मन से एक हो चुके थे।

श्रमणा प्रकृति ब्रह्म की तरह एकाकार हो चुकी थी। जब दोनो राम और श्रमणा इस प्रेम समाधि से तिरोहित हुये तो ब्रह्मा लोक में आ गये। राम कई दिनो से भूखे थे उन्होंने कुछ खाने को मांगा। श्रमणा के पास

चख–चख कर रखे हुये बेरो के अलावा और अधिक कुछ न था जूठे बेरो का दोना राम बरबस श्रमणा से छुड़ा कर खाने लगे। श्रमणा अपने प्रियतम राम की मर्यादा नहीं तोड़ना चाहती थी। वह कह उठी–

प्रभु अनर्थ मत करो, लीक संसृति की मिट जायेगी,
जूठे बेर भीलनी के खाये, दुनियां गायेगी।

किन्तु राम ने एक बेर लिखा। अन्त में राम श्रमणा से पूंछते है कि तुम्हारा क्या अभीष्ट है? तुमको मुझसे जो मांगना हो मांग लो श्रमणा की साध पूरी हो चुकी थी अब उसे कुछ नहीं चाहिए था वह निष्काम हो चुकी थी। उसे ऐसा लगा कि उसका नया जन्म हो गया।

इस प्रकार श्रमणा राम की सम्पूर्ण रूप से प्रेम और भक्ति की आराधिका बनी। उसकी सम्पूर्ण आराधना अपने लिये नहीं थी बल्कि उसने प्रेम भी लोक कल्याण में लगा दिया। अन्य नायिका प्रधान महाकाव्य की नायिकाओं से श्रमणा महाकाव्य की नायिका का प्रेम उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करता है। श्रमणा नायिका में यही विशेषता है।

4. लोकसेविका श्रमणा: श्रमणा महाकाव्य की नायिका एक लोकसेविका नायिका है श्रमणा ने न केवल मुख से बल्कि व्यवहारिक रूप से भी कार्य कर दिखाया है वह एक उदत्त नारी है बचपन से ही उसने लोकसेविका का बाना पहना है। सबसे पहले उसने अपने पिता को बाध्य किया कि वह उन पशुओं की हत्या न करे। पिता शबर राज्य द्वारा जो सेवाश्रम खोले गये थे उनका प्रबन्ध श्रमणा के ही हाथों था। वह राजकीय अतिथियों की सेवा करती थी अपने सेविकों पर भी उसका अनुशासन था। इसी लोक कल्याण का उदेश्य लेकर श्रमणा ने गृह, माता, पिता सबका परित्याग कर दिया और वेदवति से सीता को बदलने के लिये अनेकों संकट सहकर अग्नी ऋषि के

पास पहुँचती है श्रमणा के ही प्रयास से वेदवति का उद्वार होता है। सीता की रक्षा होती है और लोक शत्रु रावण का विनाश होता है। इस प्रकार श्रमणा का तन, मन और जीवन के लोक कल्याण की भावना से ओत–प्रोत है। उसने केवल सैद्धान्तिक ही नहीं व्यावहारिक रूप से भी लोक कल्याण के कार्य किये है।

5. श्रमणा का साहस शौर्य एवं पराक्रमः श्रमणा किशोरवस्था से ही साहसी एवं पराक्रमी थी, जंगल में राजकीय तालाब पर सखियों के साथ श्रमणा जल क्रीड़ा करने जाती है उसी समय उसे सिंह के बच्चे का करूणनाद सुनाई पड़ा बाहर निकलकर देखती है कि एक हाथी सिंह के बच्चे की गर्दन में सूढ़ का फंदा डालकर उसे दबोच रहा है। श्रमणा निर्भय होकर उसके पास पहुँच गई और हाथी को ललकारा उसने अपने हाथों से सिंह शावक के गले से सूढ़ बंध को खोल दिया सिंह का बच्चा बच गया और हाथी भाग गया। इससे स्पष्ट होता है कि सिंह और हाथी के युद्ध में बीच बचाव करके हाथी की सूढ़ को खोल देना श्रमणा का न केवल साहस का कार्य है बल्कि बल का द्योतक है। श्रमणा महाकाव्य की नायिका में यत्र–तत्र, साहस, पराक्रम और शौर्य के दर्शन होते है, जो अन्य महाकाव्य नायिकाओं में कम दिखाई पड़ते है।

6. दार्शनिक एवं उपदेशिका श्रमणाः दर्शन में तर्क का अत्यंत महत्व है तर्क से ही हम सत्य पर पहुँचते है। सत्य को प्राप्त कर लेने पर वह उपदेश के रूप में आ जाता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो श्रमणा में यह दोनो वृत्तियां पर्याप्त दिखाई पड़ती है। सती के समझाने पर श्रमणा संतुष्ट नहीं होती है और वह अपने विवाह से मना कर देती है। इसके अतिरिकत सती ने और भी तर्क प्रस्तुत किये किन्तु श्रमणा ने उन्हें अपनी तर्क बुद्धि से निष्प्रभावी कर दिया।

वन के ऋषियों पर अनेक आरोप लगाये तो श्रमणा को बहुत दुख हुआ। उन ऋषि मुनियों की गति भी कितनी निम्न कोटि की हो सकती है तो वह मन में मीमांसा स्वयं करती है और पाती है कि इन्द्रियों के वश में हुआ मन मनुष्य को अधोगति में ले जाता है मन की मीमांसा श्रमणा द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से की गई है इस प्रकार श्रमणा योग और दर्शन की निष्णात विदुषी और उपदेशिका है।

7. श्रमणा की राष्ट्रीय भावनाः किशोरवस्था से ही उसमें राष्ट्रीय भावना के बीज वो दिये गये थे, जब मारीच ने कैकयी के देवासुर संग्राम में भाग लेने की बात कहीं तो उसने मारीच से प्रश्न किया—

बोल उठी श्रमणा कैकयी ने भी युद्ध किया है।
तात इस कथन से मुझकों विसमय में डाल दिया।
कृपया यह बतलायें रानी ने क्यों युद्ध किया था।
नृप दशरथ ने उनको रण में क्यों कर भेज दिया था।

उसके पूछने पर मारीच ने सारे प्रजातंत्र और राष्ट्र का परिचय श्रमणा को दिया। आगे चलकर श्रमणा प्रजातंत्र की परिभाषा पूछते हुये कहती है कि अयोध्या में प्रजातंत्र आप किसे कहते है? जबकि दशरथ वहां के राजा है। इस पर मारीच विस्तार पूर्वक अयोध्या में प्रजातंत्र का विष्लेशण करता है। चतुर्थ सर्ग में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। श्रमणा में उस समय राष्ट्रीय भावन के दर्शन होते है, जब किष्किन्धा में सुग्रीव राज्याभिषेक का प्रश्न आता है, वह जन सभा को सम्बोधित करते हुये कहती है—

इधर राज्य का प्रश्न राज्य परिषद में ही आता है।
राजाहीन राज्य सिंहासन क्या शोभा पाता है।

इस प्रकार श्रमणा में वह सभी गुण राष्ट्रीयता, अहिंसा, सौदर्न्य, प्रेम और आराधना, लोकसेवा, साहस और पराक्रम, योग एवं दर्शन, विदुषी आदि विद्यमान है जो महाकाव्य की नायिका के लिये आवश्यक होते है।

श्रमणा महाकाव्य में लक्ष्मण का चरित्र–चित्रण

लक्ष्मण रामायण के एक ऐसे पात्र है जो गौंढ़ रहते हुये भी महत्वपूर्ण है। तुलसी ने लक्ष्मण के चरित्र को पर्याप्त उभारा है तुलसी ने लक्ष्मण के बारे में कहा है –

रघुपति कीरति विमल पताका, दण्ड समान भयेउ जस जाका।

यह सत्य है कि राम के यश रूपी ध्वजा में लक्ष्मण दण्ड के समान है तुलसी के रामचरित्र मानस के नायक राम है किन्तु श्रमणा महाकाव्य की नायिका श्रमणा है इसमें श्रमणा के चरित्र को ही प्रधान मानकर उससे सम्बद्ध पात्रों का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है लक्ष्मण का सीधा सम्बन्ध श्रमणा से नहीं जुड़ा है प्रसंग वश लक्ष्मण के चरित्र की झांकी मिलती है। तुलसीकृत रामायण के अनुसार खरदूषण ने राम की पर्णकुटीर को चौदह अक्षोहिणी सेना द्वारा घेर लिया, युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। कुटिया में केवल राम लक्ष्मण और सीता थी इतने बड़े राक्षस दल को संहारना न केवल कठिन था बल्कि असंभव ही था, लक्ष्मण में अर्पूव साहस और पराक्रम था वे बिना किसी शंका अथवा भय के धनुष वाण लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गये राम उनको जाने से मना करते रहे किन्तु वे नहीं रूके राम सीता से लक्ष्मण को रोकने के लिये कहते है, सीता लक्ष्मण को कुटिया में रहने के लिये कहते है लक्ष्मण फिर भी कुछ कहना चाहते है किन्तु राम उनको बोलने से रोक देते है–

लक्ष्मण ने कुछ कहने को ज्यों तनिक अधर पुट खोले।
उनके हाथ से रोक राम मीठी वाणी में बोले।

इस प्रकार लक्ष्मण राम के सहयोगी बनकर ही अन्य रामायणों की भांति श्रमणा महाकाव्य में भी प्रस्तुत हुये है, यद्यपि लक्ष्मण का चरित्र इस महाकाव्य में अल्प रूप में ही आया है किन्तु जहां भी आया है वहां बड़े उदात्त और प्रभावशाली रूप में आया है लक्ष्मण श्रमणा महाकाव्य के अनुसार चरित्रवान साहसी और वीर रूप में प्रस्तुत हुये है। वे करूणा से भी ओत–प्रोत है।

श्रमणा महाकाव्य में सीता

श्रमणा महाकाव्य में सीता राम की पत्नी है साथ ही वे आदि शक्ति एवं माया के रूप में प्रस्तुत हुई है, वे मिथिला पति विदेह राजा जनक की पुत्री है लंका के विनाश करने में सीता की मुख्य भूमिका है किन्तु श्रमणा में सीता का चरित्र परोक्ष रूप में अधिक आया है। श्रमणा महाकाव्य में सीता भारतीय संस्कृति के रूप में प्रस्तुत हुई वह भारतीय गौरव व शान्ति की प्रतीक भी है। सीता का चरित्र अधिक उज्जवल और आर्दश रूप में प्रस्तुत हुआ है। जब सीता का विवाह राम के साथ हो जाता है तो उसके बाद वह अयोध्या में एक राजकुमारी के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ कर देती है और जब माता कैकयी के वरदान के अनुसार राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया गया तो राम के साथ वन जाने को तैयार होती है। राम के मना करने के बाद भी वह पति धर्म को बतलाते हुये अपने आप को साथ जाने के लिये कहती है। इससे स्पष्ट होता है कि सीता एक पतिव्रता नारी थी और उन्होंने पति धर्म के लिये कई कठिन परिस्थितियों से अवगत कराया और जन कल्याण हेतु अपने आपको समर्पित किया। इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में सीता का चरित्र संक्षिप्त है किन्तु महत्वपूर्ण मौलिक रूप में प्रस्तुत हुआ है इस संक्षिप्त स्वरूप में सीता का नारीत्व, पत्नी, बहिन, त्यागी एवं लोक हितैषी चरित्र आर्दश रूप में प्रस्तुत हुआ है। जो अन्य रामायण में उपलब्ध नहीं है।

श्रमणा महाकाव्य में कैकयी का चरित्र

राम चरित्रमानस, बाल्मीक एवं अन्य रामायणों में कैकयी ऐसा पात्र है जिसकी छवि खलनायिका के रूप में प्रस्तुत की गई है बाल्मीक ने भी कैकयी की बहुत भर्त्सना की है। किन्तु तुलसीदास जी ने जहाॅ कैकयी का चरित्र राम के प्रति क्रूरता के रूप में प्रस्तुत किया है वहाॅ उसको संभाला भी है लेकिन उन तथ्यों पर लोग ध्यान नहीं देते है। जहाॅ तुलसी ने कैकयी को निर्दोश सिद्ध किया है अयोध्या काण्ड में चित्रकूट की सभा में राम सार्वजनिक रूप से घोषणा करते है –

दोष देई जजनी जड़ तेई, जिन गुरू साधु सभा नहिं सेई।

इससे स्पष्ट होता है कि तुलसी की दृष्टि में कैकयी निर्दोष है राज महलों ने भरत ने कैकयी को बहुत बुरा भला कहा किन्तु जब राम के द्वारा कैकयी के प्रति यह बचन सुने और व्यवहारिक रूप से उनकी आस्था देखी राम सर्व प्रथम दोनो माताओं को छोड़कर चित्रकूट में कैकयी माँ से मिले और बार–बार चरणों में पड़कर काल और कर्म की गति के बारे में समझाते है। श्रमणा महाकाव्य में इन्हीं तथ्यों के आधार पर कैकयी के अब तक के धूमिल चरित्र को उज्जवल बनाकर रामकाव्य परम्परा में सर्वथा नवीन अध्याय संकलित किया है श्रमणा महाकाव्य में कैकयी का चरित्र सर्वथा मौलिक किन्तु तर्क पूर्ण आधार पर प्रस्तुत किया है श्रमणा महाकाव्य की कैकयी वीर, क्षत्राणी, पराक्रमी, राजनीतिज्ञ, ज्ञानदर्शी, लोक कल्याणी एवं राम की पथ प्रदर्शिका माता के रूप में प्रस्तुत की गई है। श्रमणा महाकाव्य पढ़ने के पश्चात पाठक के हित में कैकेयी के प्रति सम्मानित श्रृद्धास्पद एवं आर्दश नारी का चित्र बनता है यह निश्चय ही इस महाकाव्य की प्रमुख उपलब्धि है।

श्रमणा महाकाव्य में शबर सेन का चरित्र – चित्रण

शबर सेन पंचवटी में कोलभील शबरों के राजा थे। श्रमणा शबर सेन की ही पुत्री थी। अरण्यवासी होने के कारण इनका सारा जीवन व्यापार वन्य पशुओं पर ही निर्भर था हिंसा ही इनका कर्म और धर्म था। और उनका कथन था कि –सच पूछों तो हिंसा जग में सभी किया करते है।

एक दूसरे के जीवन पर सभी जिया करते है।

इससे स्पष्ट होता है कि शबर सेन हिंसावादी थे लेकिन श्रमणा के समझाने पर उन्होंने हिंसा को त्याग दिया था। श्रमणा महाकाव्य में शबर सेन को राजा दशरथ के समान माना और उनके जीवन के अन्तिम क्षण भी दशरथ की भाँति पुत्री के वियोग में प्राण उत्सर्ग हुये उनके बारे में कवि ने लिखा है –

धन्य हुये थे एक दिवस शबराधिप श्रमणा पाकर।
हुये आज भी धन्य न पाकर अपना प्राण गवांकर।
भक्त और भगवान अलग दो होते भला कहीं है।
यदि हो जाये चरित्र एक तो कुछ आश्र्चय नहीं है।
दोनो का उद्देश्य गृह तज बन गये उदासी।
युगल पिता सन्तति वियोग में बनें स्वर्ग के वासी।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में श्रमणा के पिता शबर सेन की महत्वपूर्ण एवं आर्दश भूमिका रही जो सर्वथा उचित है और अन्य ग्रन्थों में शबर सेन के चरित्र की उपलब्धि नहीं है।

श्रमणा महाकाव्य में मारीच

मारीच भी श्रमणा महाकाव्य का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण पात्र है श्रमणा की कथा संवर्धन में मारीच ही आधार रूप में प्रस्तुत हुआ है। जब श्रमणा अपना परिचय देते हुये मारीच का परिचय पूछती है मारीच अपने को लंकापति रावण की गुप्तचर सेना का नायक बताता है और अयोध्या की गुप्तचरी करके रावण को सूचना देने का कार्य करने की बात कहता है। विश्वामित्र के आश्रम में राम से संघर्ष हुआ और उनके ही वाण से समुद्र के किनारे गिरने की बात कहता है। मारीच के द्वारा राम से अपनी समरूपता सुनकर श्रमणा के कपोल लज्जा से लाल हो गये थे, प्रसन्नता में उसकी आँखे बन्द हो गई। शबर सेन के पूछने पर विस्तार पूर्वक राम से युद्ध का वर्णन मारीच ने शबर सेन को सुनाया और कृतज्ञता प्रकट करते हुये जाने की बात कहीं। इस प्रकार मारीच का परिचय श्रमणा से हुआ। श्रमणा महाकाव्य में मारीच की यह भूमिका महाकाव्य के विस्तार के लिये राम के साथ जुड़ने में कथा संयोजन का महत्वपूर्ण कार्य करती है। श्रमणा महाकाव्य में मारीच का महत्वपूर्ण एवं सम्मानीय स्थान है सत्य ज्ञात होने पर उन्होंने असत्य रावण का साथ छोड़कर लोकहित में अपने प्राण त्यागे मारीच के बारे में श्रमणा ने अपना मंतव्य इस प्रकार व्यक्त किया –

मृत्यु समय में हर्ष अहा मारीच संत बलिहारी।
क्यों न रहेगी जन्म–जन्म तक यह शुभ कीर्ति तुम्हारी।

श्रमणा महाकाव्य में मारीच को रामभक्त सिद्ध किया है।

श्रमणा महाकाव्य में अहिल्या

श्रमणा महाकाव्य में अहिल्या की इस कथा को बहुत संभाल कर प्रस्तुत किया गया है श्राप से नारी को पत्थर बना देना भगवान की भक्ति

भावना की पोषक है, पर श्रमणा का उद्‌देश्य तो मानव चरित्र को संभाल कर गाने का है इसलिये अहिल्या की कथा औचित्य के साथ नये परिवेश में प्रस्तुत की गई है श्रमणा को जल क्रीडा करते समय सिंह और हाथी की लड़ाई का बीच बचाव करते हुये शुक ने देखा तो शुक ने श्रमणा के बल और साहस की प्रशंसा की श्रमणा ने जब उस तोते का परिचय मांगा तो उसने अपना परिचय इस प्रकार दिया –

मैं गौतम वन का वासी ऋषि पत्नी का शुक प्यारा।
ऋषि अभिशप्ता वहां अहिल्या भोग रही थी कारा।

पतिव्रता अहिल्या ने पूरे जीवन पति आज्ञा का पालन किया था। लेकिन संशय के कारण गौतम ऋषि ने अहिल्या से कहा तुम्हारा पतिव्रत धर्म नष्ट हो चुका है इसलिये अब तुम्हारा पतिव्रत धर्म काम नहीं करेगा तुमने पर पुरूष के साथ गमन किया है, इसलिये मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ। तुम पत्थर बनकर इसी वन में पड़ी रहो गौतम का श्राप सुनकर अहिल्या उनके चरण पकड़कर कहने लगी–

सुनकर शब्द कठोर अहिल्या गिरी चक्रवत भू पर।
आर्त स्वर में किया निवेदन ऋषि के चरण पकड़कर।
निरपराध मैं, वेष आपके में सुरपति आया था।
नाथ! देव माया ने मेरे मन को भरमाया था।

किन्तु गौतम ऋषि ने अहिल्या की एक भी बात नहीं सुनी और उसे एक विशाल गुफा में बन्द कर दिया। और उसके द्वार पर एक बहुत बड़ी शिला लगा दी उस स्थान का सारा वन अहिल्या के अर्तनाद से गूँज रहा था और इतनी करूणा फैली कि वह स्थान प्राणी रहित हो गया। केवल उसका वह प्रिय शुक ही अहिल्या का मोह न तोड़ सका। कुछ दिनों के बाद जब विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण उस गुफा के पास आये तो उन्होंने

अपने संकल्प से उस शिला को खण्डित कर दिया। शिला खुलते ही अहिल्या राम के चरण स्पर्श करने के लिये दौड़ी किन्तु राम ने उसे अपने चरण नहीं छूने दिये। राम अहिल्या को लेकर गौतम ऋषि के पास पहूँचे और अहिल्या को निर्दोष बताते हुये स्वीकार करने के लिये कहा। राम ने अहिल्या के निर्दोष होने के जो तर्क दिये वह अकाट्य और महत्वपूर्ण है। इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में अहिल्या की कथा एक नवीन परिवेश में मर्यादानुकूल प्रस्तुत की गई है जो प्राचीन होते हुये भी मौलिक परिवेश में है।

श्रमणा महाकाव्य में विश्वामित्र

श्रमणा महाकाव्य में विश्वामित्र का वृतान्त दशवें सर्ग में देखने को मिलता है। रामचरित मानस में ऋषि विश्वामित्र का महत्वपूर्ण स्थान है वे राम के गुरू के रूप में प्रख्यात थे। विश्वामित्र जाति के क्षत्रिय थे राज्य त्यागकर तपस्या करके ऋषि बन गये थे। ये क्रोधी एवं दृढ़ संकल्पी थे। जब श्रमणा घर से भागकर वन में समाधि लगाकर बैठ जाती है और समाधि समाप्त होने के पश्चात जब वह कुन्ज से बाहर आयी तभी उसे ऋषि विश्वामित्र दिखाई पड़ते हैं और श्रमणा से वही परिचय होता है। अपने आराध्य के गुरू से मिलकर श्रमणा को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह विश्वामित्र के चरण स्पर्श करना चाहती है किन्तु अपने को शबर जाति की अपवित्र नारी बतलाकर वह चरण स्पर्श की अधिकारिणी नहीं मानती। ऐसे वचनों को सुनकर विश्वामित्र ने उसे बताया कि तुम ईश्वर का अंश हो इसलिये तुम श्रेष्ठ हो, अपनी श्रेष्ठता का परिचय दो। श्रमणा से जन्म से लेकर अब तक सारा वृतान्त ऋषि विश्वामित्र को सुनाया। और उसने बड़ी व्याकुलता के साथ पूछा कि क्या मैं राम को पा सकती हूँ। मैं अत्यंत दीन–हीन अस्पृर्शया नारी हूँ इस हीनता की भावना को सुनकर ऋषि विश्वामित्र में शबरी के भ्रम को दूर करने के लिये उसे उपदेश दिया है –

हम तुम यह सब अंश मात्र उस अंशी ईश्वर के है।

नहीं अंश अंशी में कोई भेद सूक्ष्मतर के है।

गंगा का जल भले पात्र में हो या सरिता में।

कमी न आती गुण प्रभाव में निर्मलता सुचिता में।

ऐसे उपदेशों को सुनकर श्रमणा अपने आपको कृतज्ञ मानती है।

यह विश्वामित्र की कथा भी श्रमणा में मौलिक रूप में प्रस्तुत हुई। इससे वर्तमान वर्ण संघर्ष एवं जातिवाद को रोकने के लिये समुचित समाधान दिया गया है।

श्रमणा महाकाव्य में सुनैना

श्रमणा महाकाव्य में सीता की माता सुनैना का चरित्र बिलकुल नये परिवेश में प्रस्तुत हुआ। रामचरितमानस की भॉति वे केवल राम की सास ही नहीं बल्कि कटु आलोचक भी रही है चित्रकूट का आँखो देखा हाल जटायु ने श्रमणा को बतलाया। सुनैना राम को उलाहना देते हुये कहती है राम सीता को वन में भेजने के लिये तुम्हें सौपा था। मै तो सोचती थी कि यह तो चक्रवर्ती राजा की राजवधू बनेगी किन्तु तुमने इसे तपस्वी बना दिया ऐसे वचनों को सुनकर सीता ने मॉ को सात्वना दी कि वह पति और देवर के साथ वन में सुखी है केवल आपके दर्शन की लालसा थी वह पूरी हो गई सुनैना ने ऐसे वचनों को सुनकर अपनी पुत्री को हृदय से लगाया सीता की मनोभावना सुनकर जनक के नेत्रों में आंसू आ गये इस प्रकार सुनैना का चरित्र सास और माता के रूप में नवीनता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

श्रमणा महाकाव्य में हनुमान

श्रमणा महाकाव्य में हनुमान का चरित्र बहुत ही उचित ढंग से प्रस्तुत किया है नये संदर्भो में उनका परिचय दिया गया है। हनुमान ने जिस प्रकार

राम को सुग्रीव से मिलाया था, उसी प्रकार श्रमणा महाकाव्य में श्रमणा ने राम को सुग्रीव से मिलाया था। जिसके कारण कथानक में एक महत्वपूर्ण कड़ी जुड़ गई है। सर्व प्रथम दशवें सर्ग में विश्वामित्र ने श्रमणा को हनुमान का परिचय इस प्रकार दिया है –

हनुमान का परिचय किष्किन्धा में तुम्हें मिलेगा।
सखा राम के है शैशव के वही प्रसंग चलेगा।
अद्वितीय बल पौरूष कोमल हृदय महाज्ञानी है।
बालि बंधु सग्रीव सखा है अति अवढर दानी है।
वे खग पशु जल चर स्वभाव भाषा के विज्ञानी है।
यह विधा अपनी माता से शैशव में जानी है।

यहां इस बात का उल्लेख देखने को मिलता है कि हनुमान को पशु पक्षी जलचर के स्वाभाव और भाषा का जानकार कहा है। यह विद्या उन्होंने अपनी माता से प्राप्त की थी। जटायु और विश्वामित्र के कहने से जब श्रमणा किष्किन्धा नगर में प्रवेश करती है तो उसका परिचय सर्व प्रथम हनुमान से होता है। श्रमणा ने हनुमान को अपना परिचय दिया और कहा कि राम रावण का दर्द नष्ट करने के लिये अयोध्या से चल दिये है। उनके इस कार्य में किष्किन्धा का तन मन धन से सहयोग की आवश्यकता है इसलिये आपसे अनुरोध है कि इस कार्य में सहयोग करें। इस प्रकार हनुमान का चरित्र श्रमणा महाकाव्य के अनुकूल और महत्वपूर्ण स्थान पर प्रस्तुत किया गया। हनुमान के सहयोग से ही श्रमणा ने आगे चलकर सुग्रीव और किष्किन्धा के सभी वानरों को राम के कार्य में हाथ बटाने के लिये तैयार किया, जिस प्रकार राम को सुग्रीव से मिलाने में हनुमान का हाथ है उसी प्रकार श्रमणा को भी मिलाने में विशेष सहयोग रहा।

श्रमणा महाकाव्य में सुग्रीव

श्रमणा महाकाव्य में सुग्रीव का चरित्र अन्य रामकथा के अतिरिक्त ही प्रस्तुत हुआ है। राम का मानव अवतार निशाचरों के विनाश के लिये हुआ था, क्योंकि उसने ब्रह्म से वरदान मांगा था कि मेरी मृत्यु किसी के द्वारा न हो किन्तु मनुष्य और वानर का तो मुझे कोई भय नहीं है। यही कारण है कि ब्रह्म को मनुष्य का अवतार लेना पड़ा। अब वानरों की भी आवश्यकता थी जिसे सुग्रीव ने पूर्ण किया। एक बार किष्किन्धा में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया जिसमें श्रमणा को उसका अध्यक्ष बनाया गया उनके द्वारा ही जनता के निर्णय की घोषणा की जायेगी कि किष्किन्धा की जनता की सहमति से सुग्रीव को ही सिंहासन पर बैठाने की घोषणा की गई। तारा को राजमहिषी और अंगद को युवराज बनाया, इस प्रकार सुग्रीव का चरित्र मौलिक होते हुये भी श्रमणा महाकाव्य में अधिक महत्वपूर्ण बन गया है।

श्रमणा महाकाव्य में मतंग ऋषि

श्रमणा महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग में जटायु ने श्रमणा को निर्देष दिया था कि वह मतंग ऋषि के गुरूकुल में जाकर उनसे शिक्षा–दीक्षा अवश्य लें और उसी के बाद श्रमणा मतंग ऋषि के आश्रम में पहुॅचती है लेकिन वह आश्रम में प्रवेश नहीं कर पाती क्योंकि रात हो गई थी। श्रमणा आश्रम के द्वार पर ही सो गई थी स्नान के पश्चात जब मतंग ऋषि ने आश्रम में प्रवेश किया तो श्रमणा द्वारा उनके चरण को छू लिया जाता है। शबर जाति होने के कारण मतंग ऋषि उसे अपवित्र मानकर उसे बहुत बुरा भला कहते है, लेकिन अंत में मतंग ऋषि उसे स्वीकार कर लेते है और गुरूकुल में प्रवेश दे देते है और कुछ ही दिनों में श्रमणा ने अपनी सेवा और योग्यता के कारण समस्त गुरूकुल को अपना बना लिया और गुरू मतंग श्रमणा से बहुत

प्रसन्न थे। इस प्रकार मतंग ऋषि द्वारा जाने अनजाने कथानकों के माध्यम से श्रमणा की कथा संयोजन में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है।

श्रमणा महाकाव्य में वेदवती

श्रमणा महाकाव्य में वेदवती का चरित्र बाल्मीकि रामायण से लिया गया है वेदवती वैदिक ऋषि अग्नि की पालिता पुत्री थी। जब वह व्यस्क हो गई तो पिता के द्वारा विष्णु का परिचय मिला, वह विष्णु को वर के रूप में प्राप्त करने के लिये साधना में लीन हो गई। वह बहुत सुन्दर थी। जब तपस्या में लीन थी तो भ्रमण करता हुआ रावण आया और वेदवती पर सम्मोहित हो गया उसने बल पूर्वक वेदवती का शीलभंग कर दिया और वेदवती की साधना भंग हो गई और इसी कारण वेदवती ने प्रतिज्ञा की कि मैं लंका जाकर रावण का विनाश अवश्य करूंगी। इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में अवश्य करूंगी ऐसी मन में धारणा लेकर वेदवती ने अग्नि ऋषि के कहने पर अपना शरीर तो नहीं त्यागा क्योंकि अग्नि ऋषि ने वेदवती को बताया कि राम की भार्या सीता तुम्हारी जुड़वा बहिन है ऐसी संभावना व्यक्त की जा रही है कि सीता का हरण रावण अवश्य करेगा इसलिये तुम्हें सीता के बदले लंका पहुँच जाने का अवसर प्राप्त होगा और तुम अपने रावण विनाश की प्रतिज्ञा में सफल हो सकती हो। ऐसा सुनकर वह सीता के वेश में लंका पहुँच जाती है और अपनी प्रतिज्ञा में सफल होती है। इस प्रकार इस महाकाव्य में कथा संयोजन की दृष्टि से वेदवती की कथा मौलिकता के सूत्र में पिरोकर रोचकता पूवर्क प्रस्तुत की गई है।

श्रमणा महाकाव्य में बाल्मीकि

रामचरित पर सर्व प्रथम काव्य लिखने वाले महर्षि बाल्मीकि पौराणिक ऋषि है। इसके पहले रामचरित्र पर ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था इसलिये इनको आदि कवि कहा जाता है। श्रमणा महाकाव्य में अन्य

रामायणों की भॉति बाल्मीक की विस्तृप्त कथा नहीं आई। श्रमणा महाकाव्य में बाल्मीकि के द्वारा उन सभी आक्षेपों का समाधान किया गया है जो वर्तमान में राम पर लगाये जाते है जैसे– सीता परित्याग, संभुक वध आदि। इस प्रकार बाल्मीकि श्रमणा से इतने अधिक प्रभावित हो चुके थे कि ब्रह्म शक्ति की मान्यता देते है। श्रमणा महाकाव्य में बाल्मीकि का कथानक मौलिक समस्यायों के समाधान रूप में प्रस्तुत हुआ है।

श्रमणा महाकाव्य में रावण

रावण रामचरित में खलनायक के रूप में महत्वपूर्ण पात्र है। श्रमणा महाकाव्य के अनुसार रावण भ्रमण करता हुआ श्रमणा के आश्रम में पहुॅच गया किन्तु कुटिया में इतना तेज था कि वह उसमें प्रवेश नहीं कर सका पले हुये शुक सारिका ने रावण से कहा तुम्हें अपने बल और बुद्धि का अभिमान है, बल के प्रतीक हाथ जोड़कर तथा बुद्धि के प्रतीक सिर झुकाकर कुटिया में प्रवेश कर सकते हो ऐसा ही करके जब वह कुटिया के अन्दर गया तो श्रमणा समाधि में लीन थी। श्रमणा का तेज और सौन्दर्य देखकर रावण भी सम्मोहित होकर ध्यानास्त हो गया। तभी उसने अपने ध्यान में लंका का पतन और विभीषण को राजा बनते हुये देखा। तब अकुलाकर उसने नेत्र खोल दिये। जब तक श्रमणा समाधि से जाग्रत हो चुकी थी। पूछने पर रावण ने बताया कि मैं अपने मित्र बालि से मिलने गया था, लौटते समय आपका आश्रम देखा तो यहॉ चला आया। इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में रावण के चरित्र के माध्यम से संसार की विनाशकारी आविष्कारों को हेय और हानिप्रद बताकर उन्हें रोकने का संदेश दिया है। दूसरे भौतिक संसार में शान्ति का प्राप्त होना संभव नहीं है। शान्ति स्वयं ज्ञान और साधना के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में मुख्य–मुख्य पात्रों का चरित्र वर्णन किया गया है। इसके अलावा अन्य अनेक चरित्र इन्द्र, गौतम, जटायु, बनावटी साधु, दक्षिणवासी जन समुदाय, दासी दास, शुक सारिका भी आये है। इस अध्याय में जिन पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है वह संक्षिप्त आर्दश रूप में प्रस्तुत हुऐ है जो अन्य रामायणों से मौलिक है।

सन्दर्भ सूची (तृतीय अध्याय)

1. वृहद् धर्म पुराण — प्रथम खण्ड़ 1/30/43
2. वृहद् धर्म पुराण — प्रथम खण्ड़ 30/47/51
3. स्टडीज इन रामायण, रीडिल्स ऑफ रामायण वाई. के.एस.रामशास्त्री
4. गरूण पुराण – पूर्व खण्ड़ अध्याय– 143
5. हरिवंश पुराण – विष्णु पर्व – 93/6–33
6. स्कंद पुराण – वैष्णव खण्ड़ – अध्याय– 17 से 20
7. मत्स्य पुराण – अध्याय– 12/68
8. बाल्मीकि रामायण – बालकाण्ड (प्रथम सर्ग) श्लोक 56
9. बाल्मीकि रामायण – अरण्य काण्ड (73 सर्ग) श्लोक 26–27
10. श्रमणा महाकाव्य – सिंहावलोकन पृष्ठ– 15
11. श्रमणा महाकाव्य – पृष्ठ– 5
12. श्रमणा महाकाव्य – सिंहावलोकन पृष्ठ– 19
13. रामचरित मानस – बालकाण्ड – दोहा– 49–50
14. रामचरित मानस – अरण्य काण्ड – दोहा– 35–36
15. काव्य प्रकाश – आचार्य मम्मट
16. रामचरित मानस – बालकाण्ड – दोहा– 13/14
17. श्रमणा महाकाव्य – पृष्ठ– 9
18. श्रमणा महाकाव्य – सिंहावलोकन पृष्ट– 12–13
19. श्रमणा महाकाव्य – अपनी बात पृष्ठ– 25
20. रामचरित मानस – बालकाण्ड दोहा– 1/2
21. सत्य के प्रकार (13)

    1. दम, 2. मत्सरता, 3. लज्जा, 4. तितिक्षा, 5. असूया, 6. सुचिता, 7. ध्यान, 8. क्षमा, 9. साधुता, 10. विद्या, 11. धैर्य, 12. सत्य, 13. अहिंसा
22. ज्ञान की सात भूमिकाऐं

    1. शुभेच्छा, 2. विचारणा, 3. तनुमानस, 4. सत्वापत्ति, 5. अंश शक्ति 6. पदार्थ भावना, 7. तुरीय

23. श्रमणा महाकाव्य — सिंहावलोकन पृष्ठ— 13

24. रामचरित मानस — अध्योध्या काण्ड—दोहा— 262 / 263

25. रामचरित मानस — अयोध्या काण्ड दोहा— 47 / 48

26. श्रमणा महाकाव्य — सर्ग अष्टम— पृष्ठ— 96 छन्द 3,10,11

27. राम चरित मानस — बालकाण्ड— दोहा— 151 / 152

28. रामचरित मानस — बालकाण्ड— दोहा— 17 / 18

29. रामचरित मानस — अयोध्या काण्ड— दोहा— 217 / 218

30. नवधा भक्ति के प्रकार (रामचरित मानस के अनुसार)

1. संतो का संग, 2. कथा में रति, 3. गुरू की सेवा, 4. कपट छोड़कर प्रभु का गान, 5. दृढ़ विश्वास जप, 6. शील के साथ अपने कर्मों में रत लेना, 7. संसार में प्रभुमय देखना, 8. संतोष और परदोष न देख़ना, 9. निश्चल मन से प्रभु का भरोसा

31. रामचरित मानस — अरण्य काण्ड़ दोहा—24—27

32. रामचरित मानस — अरण्य काण्ड़ — दोहा — 30—31

33. रामचरित मानस — किष्किन्धा काण्ड़ — दोहा — 5

34. बाल्मीकि रामायण — उत्तरकाण्ड़ सर्ग —17

35. रामचरित मानस — लंका काण्ड़ — दोहा — 108—109 छन्द 1,2

36. सत्यार्थ प्रकाश — स्वामी दयानन्द सरस्वती, अध्याय—1, श्लोक 3

37. कवितावली — अयोध्या काण्ड़ — पृष्ठ— 37

अध्याय – चतुर्थ

श्रमणा काव्य में अनुभूति पक्ष (भावनिरूपण)

परमात्मा की अनन्त सृष्टि में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अनन्त अनुभूतियों का आगार है। करूणा, दया, श्रद्धा, ममता, हर्ष, उल्लास, भय, शोक, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, रति, सौन्दर्य आदि ऐसे भाव है, जो मनुष्य जन्म से ही प्राप्त करता है और जीवन में पग–पग पर अनुभूतियाँ करता है। यह अनुभूतियाँ परिस्थितियों वश मनुष्य को प्राप्त होती है किन्तु कवि में ऐसी प्रतिभा होती है कि भले ही उसके जीवन में कोई ऐसी घटना न घटी हो जिससे उसको अनुभूति हुयी हो किन्तु जब वह काव्य रचना करने बैठता है तो वे सभी भाव और अनुभाव की अनुभूतियाँ उसकी लेखनी से अवतरित होने लगती है। श्रमणा महाकाव्य को रस की दृष्टि से देखा जाये तो कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ में रस साकार होकर आये है। प्राचीन आचार्यो ने काव्य में रस को अधिक महत्व दिया है। रस को काव्य की आत्मा कहा है। काव्य को पढ़ने, सुनने और देखने से जो आनन्द प्राप्त होता है उसी को रस कहते है। स्थाई भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के सहयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रस के चार अंग है, इन सब के सहयोग से ही काव्य में हमें रस की अनुभूति होती है स्थाई भाव, विभाव, अनुभाव या व्यभिचारी या संचारी भाव। स्थाई भाव से तात्पर्य है कि स्थिर एवं सबल मनोवृत्ति। रस स्थायी भाव की परिपक्वावस्था है। स्थायी भाव उस स्थिर भाव को कहते है जो अन्य सभी परिवर्तनशील अवस्थाओं में एक सी रहती हुई उन अवस्थाओं में दब नहीं जाती वरन् उनसे पुष्ट होती रहती है। स्थूल शब्दों में मुख्य भाव को स्थायी भाव कहते है, अन्य भाव इन भावों में सहायक एवं बर्धक होते है। ये स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा व्यक्त होकर रस बन जाते है। जो व्यक्ति, पदार्थ, बाहरी

परिवर्तन, विकार, मानसिक भाव को उत्पन्न करते है। उनको विभाव कहते है। विभाव के दो भेद होते है। 1. आलम्बन विभाव 2. उद्दीपन विभाव। जिसका आलम्बन ग्रहण कर भाव जाग्रत होते है, वही आलम्बन होता है, जिन बातो से जाग्रत भाव उत्तेजित होता है, उन्हें उद्दीपन कहते है। आलम्बन के प्रति किसी भाव के उत्पन्न होने पर आश्रय के शरीर में कुछ विशेष चेष्टायें दिखलायी देने लगती है, उसके मुख से वचन भी कुछ विशेष ढंग से निकलने लगते है, इन्हीं चेष्टाओं और वचनों के द्वारा आश्रय के हृदयगत भावों की सूचना पाते है। इन्हीं चेष्टाओं और वचनों को अनुभाव कहते है। अनुभाव भावानुभूति के अनुकर्म है अर्थात् उसके व्यक्त प्रभाव है। संचारी भाव वे अस्थायी भाव है जो क्षण–क्षण में उठ गिरकर स्थाई भाव की पुष्टि करते है। स्थायी भावों को हम जल कह सकते है जो नदी या सरोवर में स्थाई रूप से रहता है और इन क्षण कालीन सहायक भावों (संचारी भावों) को जल में उठने वाली लहरें कह सकते है जिनका अस्तित्व मात्र क्षणिक होता है। ये अवसर पाकर उठते है और उसी स्थायी भाव में विलीन हो जाते है। संचारी भावों की संख्या तैतीस मानी गई है। स्थायी भाव नौ माने गये है। उन्हीं के अनुसार रस भी नौ कहे गये है।

1. रति – श्रृंगार रस 2. हास्य – हास्य रस 3. शोक – करूण रस 4. उत्साह – वीर रस 5. क्रोध – रौद्र रस 6. भय – भयानक रस 7. जुगुप्सा – वीभत्स रस (घृणा) 8. विस्मय – अद्भुत रस 9. निर्वेद – शान्त रस।

रस की सामान्य विवेचना के पश्चात श्रमणा महाकाव्य में विभिन्न रसों की स्थिति की विवेचना करेगें।

1. श्रमणा महाकाव्य में श्रृंगार रस : श्रृंगार रस को सर्व प्रथम और सर्व प्रमुख रस मानते हुये प्रायः सभी आचार्यो ने रसराज की संज्ञा प्रदान की है बाबू गुलाब राय श्रृंगार को रसराज मानते हुये लिखते है " इस रस की तीव्रता, विस्तार, शक्ति और प्रभाव और शालिनता अन्य सभी रसों से अधिक

बढ़ी चढ़ी है। शास्त्रीय आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक सभी दृष्टिकोण से श्रृंगार की महत्ता स्वीकार की गई है। श्रृंगार शब्द श्रृंग और आर दो शब्दों के द्वारा निर्मित हुआ है।" श्रृंग का अर्थ है 'काम' और 'आर' का अर्थ है प्राप्ति" अर्थात् जिसके द्वारा काम भावना की उत्पत्ति हो वही श्रृंगार रस है। हृदय में काम भावना का विकास जिस आधार पर होता है वही श्रृंगार रस कहा जाता है। श्रृंगार की व्यापकता इतनी है कि इसकी सीमा का आंकलन कर पाना असंभव है। श्रृंगार रस के दो भेद किये गये है। 1. संयोग श्रृंगार 2. वियोग श्रृंगार या विप्रलम्भ श्रृंगार।

1. संयोग श्रृंगार : जहॉ नायक और नायिका के मिलन का वर्णन होता है वहॉ संयोग श्रृंगार होता है। संयोग के वर्णन के अन्तर्गत आलम्बन और आश्रय के पारस्परिक हास्य परिहास, आलिगंन, चुम्बन, संभोग आदि के सभी व्यापार आ जाते है, जिससे उनकी मानसिक और शारीरिक निकटता प्रकट होती है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति या प्रेम है। श्रमणा महाकाव्य जैसा कि कवि ने सिंहालोकन में स्वयं लिखा है कि मुख्य रस 'शान्त' रस है श्रृंगार उसका उप रस है। श्रमणा में श्रृंगार रस की अन्तिम परिणिति शान्त रस है। ये पहले ही कहा जा चुका है कि इस महाकाव्य की नायिका श्रमणा है और उप नायक राम है सम्पूर्ण कथा इन्हीं नायिका नायक के मध्य प्रसारित हुई है। नायिका श्रमणा का सम्पूर्ण जीवन वियोगजन्य रहा है उसके सारे प्रत्यन राम से मिलने अथवा पाने में रहे है। इससे शान्त रस की प्रमुखता ज्यादा प्रतीत होती है।

इस प्रकार यहॉ संयोग श्रृंगार के अलावा विप्रलम्भ श्रृंगार भी परिपक्व हो जाता है श्रृंगार रस के वर्णन में वियोग का पक्ष अधिक व्यापक होता है। वियोग पक्ष को कवियों और आचार्यो ने वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार कहा है। वियोग श्रृंगार के अधिक व्यापाक होने के मूल में के दुख की व्यापाक भावना

निहित है। संयोग प्रेम का स्थूल पक्ष है तो वियोग उसका सूक्ष्म पक्ष है। संयोग अन्तः करण का संकोचक है और वियोग उसका विस्तारक।

श्रमणा महाकाव्य में वियोग श्रृंगार का प्राधान्य है क्योंकि वह जीवन भर राम की प्रतीक्षा में रही। विरह के जो भी चित्र खीचें गये वे अत्यंत मार्मिक एवं हृदयग्राही है। विप्रलम्भ के उपर्युक्त भेदों पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करूण का श्रमणा महाकाव्य यथासाध्य वर्णन हुआ है प्रारम्भ में पूर्व राग का वर्णन किया जा चुका है।

1. श्रमणा महाकाव्य में शान्त रस : शान्त रस का स्थायी भाव है निर्वेद है। निर्वेद को सम से भी अभिहित किया गया है सम या निर्वेद का तात्पर्य है वैराग्य दशा में आत्मरति से होने वाला आनन्द। अपने आप को तुच्छ समझना या विषयों से वैराग्य ही निर्वेद है और इसलिये वह सांसारिक जीवों के लिये तो अमंगल रूप ही है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार शान्त रस का स्थायी भाव सम, आश्रय, उत्तमपात्र, संसार की असारता और आनित्यता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप बोध इस रस के आलम्बन है सद्गुरू प्राप्ति सत्संग पवित्र आश्रम, तीर्थ, रमणीय एकान्त वन आदि उद्दीपन है। रोमांच, आनन्दाश्रु, गद्गद् कंठ इत्यादि शान्त रस के अनुभाव है। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, प्राणियों पर दया आदि इसके संचारी है। इस दृष्टि से करूणा पूर्ण भक्ति विषयक पद शान्त रस की कोटि में न आकर भाव की ही श्रेणी में परिणित होगें। भक्ति को भी शान्त रस का अंगभूत माना गया है।

श्रमणा महाकाव्य में मुख्यतः शान्त रस की ही योजना है श्रृंगार तो उसके सहायक रूप में आया है सिंहावलोकन में कवि ने लिखा है कि तुलसीदास जी ने एक ही साथ भामिनी शब्द का प्रयोग तीन बार किया है। तुलसी के स्वयं के अनुसार भामिनी शब्द श्रृंगार प्रसाधन युक्त सधवा नारी, पत्नी, प्रियतमा और क्रोधवती स्त्री के लिये ही प्रयोग हुआ है। शबरी न तो

ब्याहता थी और न ही श्रृंगार प्रसाधन युक्त स्त्री अथवा प्रियतमा और न क्रोधवती स्त्री। वरन् वह वृद्धा तपस्वनी और अविवाहिता के रूप में देखी जाती है। वृद्धा तपस्विनी और अविवाहिता के लिये भामिनी शब्द का प्रयोग एक प्रश्न चिन्ह लगा देता है। और यही प्रश्न चिन्ह उसका उत्तर भी है। सिद्ध होता है कि भामिनी शब्द गोस्वामीजी ने तीन बार जानबूझकर प्रयोग किया है। शबरी के पूर्व जन्म की कथाओं में तथा अनेक विचारकों के मतो में शबरी का प्रेम राम के प्रति कान्ताभाव में था, जैसा कि मीरा का कृष्ण के प्रति। चूंकि तुलसी के राम मर्यादा पुरूषोत्तम थे इसलिये गोस्वामीजी इस बात को स्पष्ट नहीं कहना चाहते थे।

इस तुलसी के आधार पर ही श्रमणा की रति भावना निर्वेद में परिवर्तित हो गयी राम नवधा भक्ति का वर्णन करते हुये कहते है कि नौ भक्ति में से एक नवधा भक्ति है, भी जिसके पास को वह मुझे अतिशय प्रिय है, तुममें तो सम्पूर्ण भक्तियां है। तुम्हें योगियों से भी दुलर्भ गति प्राप्त हो चुकी है। तुम अपना सहज रूप अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर चुकी हो।

आलम्बन विभाव : राम ब्रह्म के अवतार है। श्रमणा उन्हें प्राप्त करना चाहती है। उसे संसार से वैराग्य हो गया। शबरी के पिता सती से कहते है कि श्रमणा सांसारिक बंधनों से मुक्त होना चाहती है, वैराग्य लेना चाहती है

निशि वासर यह कथा राम की सुनती और सुनाती।
और उन्हीं के गुण स्मरण में अन्तरमन हो जाती।

यहां श्रमणा को संसार से पूर्ण रूप से वैराग्य उत्पन्न हो गया था और उसने घर परिवार सब कुछ त्याग दिया था। यही शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद की पुष्टि होती है।

पूर्व जन्म में श्रमणा जब वह अप्सरा थी तो इन्द्र के दरबार में स्वभावतः विष्णु की ओर देखा, यह इन्द्र को अच्छा नहीं लगा। इन्द्र ने उसे

श्राप दे दिया, यही श्राप विष्णु की ओर आकर्षित होने का कारण बना, वह कहती है –

अधम भई तो का वश मेरो,
जाये हेरवे, खो जग तरसै,
इन्द्र सभा सौं मे हरि हैरों,
सुर भौं तान न आन भई कछु,
थिरकत हूँ पग भयों न डेरो।

यही श्राप श्रमणा को विष्णु के अवतार राम के प्रति सात्विक रति का कारण बना, इसलिये यहां आलम्बन विभाव है और हेरना अनुभाव है।

उद्दीपन भाव : जैसा कि शब्द से स्पष्ट होता है कि जो कारण स्थायी भाव को उत्तेजित करते है उन्हें उद्दीपन भाव कहा जाता है। श्रमणा अब वैराग्य वश घर त्याग चुकी तो वह अब स्वतंत्र थी, प्रकृति उसे आकर्षित और संयोगी प्रतीत हुयी जिससे उसकी वैराग्य भावना उद्दीप्त हुयी–

यह अनन्त अम्बर वितान है,
यह अनन्त भू आंगन
नित्य प्रदीप रहा करते जिसमें,
रवि शशि तारागन,
पवन व्यंजन करता है,
पावस करता है अभिसंचन,
इतना बड़ा भवन पाकर भी
मैं क्यों रहूँ अकिचंन।

स्वप्न भी भाव को उद्दीप्त करने में सहायक हुआ है। श्रमणा महाकाव्य में श्रमणा को दो बार स्वप्न हुआ है। श्रमणा को स्वप्न में राम

दिखाई पड़ते है, वह कहते है कि मैं तुम्हारे लिये ही वन आया किन्तु वचनबद्ध और मर्यादित होने के कारण पुर में प्रवेश करने में असमर्थता है फिर भी मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा क्योंकि बिना तुमसे मिले मुझे सफलता मिलना संभव नहीं –

मुझे सफलता मिल न सकेगी, बिन तुम्हारे दर्शन।
कौन करेगा? बिना तुम्हारे मेरा पथ प्रदर्शन।

यहां स्वप्न स्वयं अनुभाव है। विश्वामित्र भी श्रमणा की निर्वेद भावना को उद्दीप्त करते है। वे किष्किन्धा जाकर राम कार्य की सिद्धि हेतु प्रत्यन करने को कहते है और सफलता का वरदान देते है। इसी प्रेरणावश श्रमणा भविष्य की योजना लेकर चल पड़ती है–

किष्किन्धा में जाकर श्रमणे! तुम उनसे मिल आना,
राम कार्य की सिद्धि हेतु, नूतन सोपान बनाना।
वरद् हस्त कर मुनि बोले, हों सफल मनोरथ सारे,
दे आशीर्वाद श्रमणा को, विश्वामित्र सिधारे।

श्रमणा महाकाव्य में एक ऐसा भी चित्र प्रस्तुत हुआ है जहां भगवान भी भक्त से मिलने के लिये उत्तेजित हो उठते है। श्रमणा प्रतीक्षा करते–करते मूर्च्छित हो गयी, उसकी मूर्छा से प्रकृति में भी हलचल होने लगी, जिससे राम के मन में श्रमणा से मिलने की भावना और अधिक उद्दीप्त हो गयी। उद्दीपन विभाव के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये। यों पूरे महाकाव्य में पवित्र आश्रम जैसे मतंग ऋषि का आश्रम, जटायु का आश्रम, सुतीक्षण, नारद, विश्वामित्र, शिव सती, जटायु और मतंग तथा श्रीराम द्वारा उपदेश एवं सत्संग स्थान–स्थान पर हुआ है। सम्पूर्ण कथानक वन की रम्यता में चला है अतः भली भाँति उद्दीपन विभाव परिपक्प होता है।

संचारीभाव :

संचारीभाव को व्यभिचारी भाव भी कहते है अर्थात् थोड़ी देर रहकर जो स्थायी भाव की पुष्टि में सहयोग देते है तथा बार–बार संचरण करते है वे संचारी भाव कहे जाते है। शान्त रस के मुख्यतः संचारी भाव निर्वेद, संसार से वैराग्य, दैन्य, हर्ष, स्मरण, दया, धैर्य, उत्कंठा, स्वप्न, स्मृति आदि है।

निर्वेद :

पिता के निधन के बाद श्रमणा को यह संसार सारहीन लगने लगा था उसके हृदय में निर्वेद उत्पन्न हो गया था जो पंक्तियां आलम्बन प्रकरण में दी गई है वही इसका उदाहरण है।

दैन्य :

राम को प्राप्त करने के लिये श्रमणा अपने को उपयुक्त नहीं पाती है इसमें दैन्य भाव आ जाते है –

अधम जाति की मैं नारी हूँ, लोक दृष्टि से हीना,
अल्पज्ञा हूँ अति आर्ता हूँ, सब प्रकार से दीना।
है मेरी अभिलाषा, राम को कभी किसी विधि पाऊँ,
किन्तु न उनकी मानव मर्यादा में छिद्र बनाऊँ।

हर्ष :

अराध्य के मिलने की आशा में जब सहयोग मिलता है उसीसे हर्ष की उत्पत्ति होती है। जटायु के कहने से श्रमणा के मन में हर्ष जाग्रत हुआ।

स्मृति :

मारीच श्रमणा से मिलकर जब बतलाता है कि मैं कर्तव्य पालन करने हेतु राम की कुटिया पर जा रहा हूँ तो श्रमणा को भी अपने कार्य की स्मृति आती है।

दया :

शान्त रस में दया का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है श्रमणा के हृदय में दया का अंकुर जन्म से ही उत्पन्न हो गया था। शैशव में मृग शाबक जब पिता के वाण से बिध गया था तो श्रमणा ने अत्यंत विषाद किया। श्रमणा ने उस मृग शावक के शरीर से जब तीर खींचा तो उसकी मृत्यु हो गयी श्रमणा विषाद में क्रंदन करने लगी। उस समय कोलभील वनवासियों के समक्ष एक दया का ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ जो उन्होंने कभी नहीं देखा था।

विशेष :

श्रमणा महाकाव्य में शान्त रस ही प्रमुख है, श्रृंगार भी है किन्तु वह वासनात्मक रूप में नहीं है बल्कि सात्विक श्रृंगार है। यदि यह कहा जाये कि श्रमणा में श्रृंगार रस शान्त रस का सहयोगी सिद्ध हुआ है तो अनुचित न होगा। इस प्रकार श्रमणा का सम्पूर्ण लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में बदल गया उसे संसार से वैराग्य हो गया था, घर परिवार– सम्बन्धी आदि से सम्बन्ध तोड़ लिये थे। विवाह के दिन ही वह घर त्याग कर वन में निकल पड़ी मतंग ऋषि के आश्रम में पहुॅचकर आध्यात्मिक ज्ञान की शिक्षा दीक्षा ली। इस श्रमणा महाकाव्य में पूर्णतः शान्त रस का परिपाक हुआ है।

श्रमणा महाकाव्य में करूण रस

शोक की परिपुष्टता का नाम करूण रस है। करूण का स्थायी भाव शोक है। यह शोक, क्लेष, इष्ट जन– वियोग, विभवनाश, वध, बन्धन, उपद्रव, उपघात आदि विभावों से उत्पन्न होता है।

1. करूण रस में आलम्बन :

प्रिय बन्धु, समाज या नष्ट ऐश्वर्य आदि।

2. उद्‌दीपन : विभाव के अन्तर्गत प्रिय जन की हानि का स्वरूप, शव–दर्शन, मृतक का गुण श्रवण, कष्ट की कल्पना, दुखित दशा आदि आते है।

3. अनुभाव : अश्रु पतन, पृथ्वी पर गिरना, वैवर्ण्य, निःश्वास, प्रलाप आदि है।

4. संचारी : वैराग्य ग्लानि, चिन्ता, आलस्य, आवेग, मोह, मरण, स्तम्भ, कम्प, अश्रु, आलस्य आदि आते है।

श्रमणा महाकाव्य में जिस प्रकार श्रृंगार और शान्त रस का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है उसी प्रकार कथानक में करूण रस की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। श्रमणा को आजन्म अपने आराध्य राम का वियोग रहा है। वियोग में तो निरंतर करूणा का श्रोत बहता रहता है। श्रमणा में लगभग सभी सर्गो में शोक के दृश्य उपस्थित हुये है।

श्रमणा काव्य में रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। जहां प्रबल एवं उद्‌दीप क्रोध की परिपुष्टि होती है वहां रौद्र रस होता है। अनिष्ट, अपमान अथवा विरोध करने वाले व्यक्ति अथवा वस्तु सभी रौद्र के आलम्बन होने योग्य है। इनकी चेष्टायें, उक्तियां तथा अनिष्टकारी स्वरूप उद्‌दीपन होगें। आरक्त नेत्र, भृकुटि भंग, दाँत अथवा ओंठ चबाना, ललकारना, प्रहार करना, छेदना आदि इसमें अनुभावों में गिने जाते है। उन्माद, मद, गर्व, ईर्ष्या, असूया, श्रम, अवहित्थ, मोह, आवेग, उग्रता आदि व्यभिचारी के रूप में प्रगट होते है।

महाकाव्य के चौदहवें सर्ग में जब मुनियों ने गुरू मतंग पर अर्नगल आरोप लगाये तो उनके एक शिष्य को क्रोध आ गया और वह क्रोध में आक्रमण के लिये खड़ा हो गया। यहां प्रौढ़ मुनि ही आलम्बन है, और उसका कथन उद्दीपन है और उसका आवेग उग्रता ही संचारी भाव है। पन्द्रहवें सर्ग में तपस्या रत वेदवती को जब रावण ने छेडा तो उससे कोई उत्तर नहीं मिला उसने उसकी ही बेड़ी से उसके चिबुक और कपोलों को सहलाया जिससे वेदवती की साधना भंग हो गई। वह क्रोध में आकर कहने लगी। रे शठ! तू इस क्रूर कर्म को करने वाला कौन है। रावण के उत्तर ने वेदवती के क्रोध में घृत का काम किया। उसने वेदवती का हाथ पकड़कर उठाया और बाहुपाश में जकड़ लिया। वेदवती का सारा शरीर क्रोध की अग्नि में जलने लगा। वह रावण के वक्ष पर कोहिनी मार कर शीघ्र ही बाहर आ गई। इससे रावण व्यथित होकर भाग गया।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में आंशिक रूप से अनेक जगह रौद्र रस के दर्शन होते है। जैसे निषाद पुत्र के साथ श्रमणा वाद–विवाद होना, देवासुर संग्राम में क्रोधित होकर असुरों का संहार करना, शेर शावक और हाथी के युद्ध में श्रमणा का क्रोधित होकर छुड़ाना, विराध वध में लक्ष्मण का क्रोध आदि रौद्र रस के उदाहरण है।

श्रमणा महाकाव्य में वीर रस

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। कार्य करने में आदि से अन्त तक उत्तरोत्तर–स्थिरता अर्थात् दृढ़ता और प्रसन्नता का जो भाव रहता है उसे उत्साह कहते है। श्रमणा महाकाव्य में बल, विद्या, प्रताप आदि उत्साह की पुष्टि होती है। श्रमणा महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में देवासुर संग्राम का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। इसमें लगभग सभी वीरों के उदाहरण आ जाते है। देवासुर संग्राम में जब शत्रुओं के प्रहार और देवताओं की चीख पुकार,

रूदंन, गर्जन आदि उद्दीपन भाव की श्रेणी में आ जाते है। दशरथ कैकेयी को रथ बढ़ाकर असुरों का रोकने के आदेश देते है।

> इंगित किया कैकयी को उस और प्रिय अवलोको,
> चल कर शीघ्र वहां असुरारों की प्रबल अनि को रोके।

कैकेयी रथ बढ़ाकर शत्रुओं के मध्य पहुँच गई। राजा दशरथ शत्रुओं को काटने में लगे थे। कैकेयी भी अपने कौशल से रथ को ऊँचा–नीचा दांये –बांये करके शत्रुओं के प्रहारों से बचाती हुई ले जाती है। यहां कैकयी का रथ को बचाना अनुभाव की श्रेणी में आता है। श्रमणा महाकाव्य का चतुर्थ सर्ग सम्पूर्ण रूप से वीर रस का उत्तम उदाहरण है। देवासुर संग्राम की वियज के बाद कैकेयी ने उँगली से रथ रोककर जो दशरथ के प्राण बचाये थे उस समय दशरथ ने कैकेयी को जो वरदान दिये, वह वरदान वीर की श्रेणी में आता है। इस प्रसंग में कैकयी का उँगली से रथ रोकना आलम्बन और रक्त की धार बहना उद्दीपन, दशरथ का शोक करना अनुभाव तथा हर्षोन्मत होना ही संचारी भाव है–

> कैकेयी भी रथ से नीचे आकर सजग खड़ी थी,
> बांये कर से रक्त धार भी बहकर निकल पड़ी थी।
> रथ से शीघ्र उतर कर नृप ने बांया हाथ संभाला।
> बोले रानी कैकयी तुमने क्या कर डाला।

श्रमणा काव्य में वीभत्स रस

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा या घृणा है। अस्थि, मांस, मल, कटे हुये शरीर के भाग, दुर्गंध आदि देख कर या सुनकर जो मन में घृणा का भाव उत्पन्न होता है वही वीभत्स की संज्ञा में आता है। यह जुगुप्सा विभाव आदि से परिपुष्ट होकर वीभत्स रस के रूप में व्यक्त होती है। श्रमणा

महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में देवासुर संग्राम में देवों और असुरों की युद्ध विभिषिका में वीभत्स रस की परिपुष्टि होती है दोनों ओर से योद्धा भिड़ गये थे। अस्त्र और शस्त्रों के प्रहार से अंग कट—कट कर विखरे हुये थे अग्नि वाण के द्वारा प्रज्जवलित अग्नि में शव होलिका के समान जल रहे थे और वारूणेय अस्त्र से उत्पन्न जल में शवें उबल रही थी रक्त से तालाब भर गये थे। देवता अंग—भंग होकर चीख पुकार कर रहे थे। युद्ध भूमि में मांस और मज्जा का सिंधु दिखलाई पड़ रहा था। इस प्रकार श्रोता या पाठक में घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है। अतः वीभत्स रस परिपक्व हो जाता है।

श्रमणा काव्य में भयानक रस

भय परिपुष्ट समस्तेन्द्रिय विक्षोभ को भयानक कहते है। इसके विभाव जड़ से लेकर चेतन तक फैले है। व्यक्ति अथवा प्राणी विशेष के साथ—साथ वस्तु विशेष भी भयानक विभाव के रूप में उपस्थित की जा सकती है। भयानक दृश्य, भयंकर शब्द, निर्जन वन आदि स्थान इसके आलम्बन है। भयोत्पादक शब्द सुनना, भयंकर दृश्य या प्राणियों को देखना या निर्जन वन आदि उद्दीपन है। भयानक की अवस्थिति में चरणादि का कम्प, नेत्र विस्फारण, वैवर्ण्य, स्वर भेद, स्तम्भ, रोमांच, मरण, त्रास, गद्गद् स्वरादि अनुभाव तथा शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चपलता स्मरण आदि व्याभिचारी भाव उत्पन्न होते है। श्रमणा महाकाव्य में भयानक रस उत्पन्न करने वाले अनेक स्थल है। सोलहवें सर्ग में रावण भ्रमण करता हुआ श्रमणा के आश्रम में पहुँच गया वह आश्रम के तेज से प्रवेश नहीं कर सका। शुक सारिका की बतायी हुई विधि से वह अन्दर प्रवेश कर गया तो देखा कि श्रमणा तेज पुंज सी रूप में पदमासन लगाये ध्यान मग्न थी, कुछ देर तक रावण एक टक श्रमणा को देखता रहा और देखते—देखते वह चेतना रहित हो गया। उस समय उसने जो भविष्य का दृश्य देखा वह अत्यंत भयप्रद था। सत्रहवें सर्ग में

मारीच के द्वारा सूर्पनखा के कथानक में भयानक रस की झलक देखने को मिलती है। अठ्ारहवें सर्ग में सीता ने एक स्वप्न देखा, स्वप्न में एक भीषण झंझावात् दिखाई पड़ा, एक प्रकाश हुआ चांदी के रथ पर स्वर्गवासी दशरथ को निर्देश करते हुये सुना कि अयोध्या में तुमने जो आने की हठ की थी अब ऐसी कोई हठ न करना। अभी वाणी पूर्ण भी न हुई थी कि महा भयंकर असुर सीता की ओर झपटा। सीता का स्वप्न भंग हो गया, भय और आशंका युक्त वचन सीता के मुँह से निकला "प्रभु रक्षा करों, प्रभु रक्षा" करों सीता भागकर राम के पास पहुँच गई। यहां सीता आश्रय में भय की निष्पत्ति हुई है।

श्रमणा काव्य में वात्सल्य रस

वात्सल्य रस प्रायः संस्कृत के आचार्यो ने नहीं माना। लेकिन हिन्दी के आचार्यो ने वात्सल्य रस को बहुत महत्वपूर्ण बतलाते हुये उसका विस्तृप्त उल्लेख किया है। सूर, तुलसी, रसखान आदि कवियों ने वात्सल्य रस की पूर्ण रूप से स्थापना की है। इसलिये वात्सल्य अब दशवें रस के रूप में स्थापित है। श्रमणा महाकाव्य में वात्सल्य रस बहुत विस्तृप्त और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुआ है। श्रमणा महाकाव्य में संयोग और वियोग वात्सल्य दोनो के चित्र प्रस्तुत हुये है। श्रमणा महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में बालिका श्रमणा की क्रीड़ा का विषद् वर्णन है –

> डगमग पग से चलकर मन हर, सुमन तोड़ लाती थी,
> दूर दूर तक कभी चरणतल, चिन्ह छोड़ जाती थी।
> अपलक दृग से खंजन भी अब, दृग निहारने लगते,
> बन मयूर अनुकृति में सनमुख पथ बुहारने लगते।
> मुख में तृण धर मृग शावक की करती साध अधूरी,
> मोर शिखा वत कर, कर पीछे बनती कभी मयूरी।

उपरोक्त उदाहरण में संयोग वात्सल्य की पुष्टि होती है बालिका श्रमणा ही इसमें आलम्बन है और क्रिया कलाप उद्दीपन है। माता–पिता एवं अन्य शबरगण आश्रय है।

पृष्ठ सौलह से उन्नीस में वियोग वात्सल्य की सिद्धि होती है। दोपहर के समय श्रमणा माता–पिता से आँख बचाकर एक विशाल वृक्ष के नीचे पहुँच गई जहां वन के सभी खूंखार पशु पक्षी ग्रीष्म के भीषण ताप से बचने के लिये बेर भाव भूल कर छाया में बैठे थे। उनमें एक हिरण का बच्चा भी था श्रमणा उसी से खेलने के लिये वहां पहुँच कर उससे लिपट गई जब माता–पिता का ध्यान इस ओर गया तो वे धनुष वाण लेकर उसे खोजने निकल पड़े उन्होंने देखा कि खूंखार जानवरों के मध्य भी श्रमणा हिरन के बच्चे के साथ सोई हुई थी। वे भय, विस्मय और शंका से व्याकुल हो गये और श्रमणा को बचाने के लिये उपाय सोचने लगे। यहां श्रमणा आलम्बन है। वृक्ष के नीचे हिंसक पशु पक्षी आदि उद्दीपन है हिरन के बच्चे के साथ सोना, लिपट जाना अनुभाव है। श्रमणा के अनिष्ट की आशंका से भय विस्मय और शंका एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता आदि संचारी भाव है श्रमणा के माता–पिता आश्रय है अतः यहां वियोग वात्सल्य की सरस व्यजंना है।

विशेष

इस अध्याय में रसों की विवेचना सामूहिक रूप से की गई। कुछ रस जैसे शान्त और श्रृंगार इतने गुम्फित है कि उनका अलग–अलग निर्धारण करना विस्तार की अपेक्षा रखता है। कतिपय उदाहरण ही यहां प्रस्तुत किये गये है। श्रमणा महाकाव्य में यह विशेषता है कि श्रृंगार रस सात्विक रूप में आया है जो बाद में शान्त रस में परिवर्तित हो गया है। ऐसे अन्य उदाहरण अन्य काव्यों में दिखाई नहीं देते।

सन्दर्भ सूची (चतुर्थ अध्याय)

1. रामचरित मानस – बाल काण्ड़ – दोहा – 104–105
2. आचार्य भरत मुनि का नाट्स शास्त्र
3. नवरस – बाबू गुलाब राय – द्वितीय संस्करण पृष्ठ– 29
4. नवरस – बाबू गुलाब राय – द्वितीय संस्करण पृष्ठ– 32
5. काव्य प्रदीप – राम बहोरी शुक्ल – 13वां संस्करण पृष्ठ– 63
6. रीति काव्य भूमिका – डॉ0 नागेन्द्र – द्वितीय संस्करण पृष्ठ– 36
7. काव्य प्रदीप – राम बहोरी शुक्ल – 13वां. संस्करण पृष्ठ– 56
8. रस मंजरी – सेठ कन्हैया लाल पोददार – पृष्ठ– 179
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल – पृष्ठ– 237
10. काव्य दर्पण – पं0 राम दहन मिश्र – पृष्ठ– 170
11. काव्य शास्त्र – डॉ0 भागीरथ मिश्र – पृष्ठ– 155
12. श्रमणा महाकाव्य – सिंहावलोकन – पृष्ठ– 23
13. काव्य शास्त्र – डॉ0 भागीरथ मिश्र – पृष्ठ– 256
14. रस रत्नाकर – हरि शंकर शर्मा – पृष्ठ– 487
15. सिद्धान्त और अध्ययन – बाबू गुलाब राय – पृष्ठ –132–133
16. साहित्य दर्पण – विश्वानाथ – 3/180
17. रीति कालीन कवियो की प्रेम व्यजंना – डॉ0 बच्चन सिंह – पृष्ठ– 41
18. रस सिद्धान्त का स्वरूप व विशलेषण – डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित– पृष्ठ 352
19. रस तरंगिणी – भान दत्त – पृष्ठ– 139
20. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग सप्तम – पृष्ठ– 105
21. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग चतुर्थ – पृष्ठ– 52
22. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग पंचम – पृष्ठ– 69
23. श्रमणा महाकाव्य – सर्ग 16 – पृष्ठ– 247
24. रस सिद्धान्त – डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित – पृष्ठ– 372
25. सूरदास और उनका साहित्य – पृष्ठ– 105

अध्याय पंचम

श्रमणा काव्य में अभिव्यक्ति पक्ष

श्रमणा महाकाव्य में भाषा का स्वरूप : किसी भी काव्य या महाकाव्य में भाषा का अधिक महत्व होता है। श्रमणा महाकाव्य की भाषा के बारे में कवि ने स्वयं लिखा है। मेरे काव्य जीवन का यही आर्दश रहा है कि हम जिसके लिये जो भी कहना चाहते है उसकी समझ में भली–भॉति आ जाना चाहिये। यही कारण है कि इस महाकाव्य में आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक प्रसंगों का गूढ़तम तथ्यों को अत्यंत सरल एवं रोचक ढंग से काव्यात्मक भाषा में समझाने का प्रयास किया है।

श्रमणा महाकाव्य की भाषा हिन्दी है, इस महाकाव्य में हिन्दी के दोनो रूप देखने को मिलते हैं। सामान्य अथवा सरल हिन्दी और साहित्यिक हिन्दी। भाषा भाव का वहन करती है। कवि भाषा के माध्यम से ही अपनी भावनाओं को सामान्य जनों के हृदय में प्रवेश कराता है। इसी उद्‌देश्य को लेकर कवि ने अधिकतर श्रमणा महाकाव्य में सामान्य हिन्दी का प्रयोग किया है। सिंहावलोकन में लिखा है – " मेरी सम्पत्ति "– मेरे काव्य की कसौटी मेरा भोला भावुक हृदय हैं। मैनें अन्य कृतियों में उल्लेख किया है कविता जब तक श्रोता के समझ न आ जाये तब तक वह कविता नही।" महाकवि अवधेश जी काव्य में सरल और सुबोध भाषा के समर्थक थे। उनका यह भी कहना है कि हिन्दी भाषा में जो बोला जाता है। वही लिखा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्थिर स्तुति आदि शब्दों को स्थिर स्तुति लिखा है। उच्चारण इ का हो अथवा मध्य में संयुक्त वर्ण के प्रयोग में गिनना पड़ती है, अतः क्यों न पहले 'इ' लिखा जाये, पाठकों से मेरा निवेदन है कि इसे वे विकति न समझकर विकास ही समझे।

श्रमणा महाकाव्य में अवधेश जी ने काव्य भाषा के प्रयोग में अपने काव्यार्थ पर सजग दृष्टि रखते हुये प्रत्येक शब्द का यथोचित एवं मनोहर प्रयोग किया है शब्दार्थ " प्राणः कवि है " कवि और क्या है? शब्द और अर्थ रूपी प्राणों का पुतला ही तो है उसमें अगर इस धर्मता का आभाव है तो वह कवि शब्द की सार्थकता का अधिकारी नहीं है। कवि ने भाषा के साथ–साथ भाव निर्वाह और शब्द के साथ–साथ अर्थ के औचित्य का भी पूर्ण ध्यान रखा है। प्रायः छन्द, रस, ध्वनि, गुण, रीति, वृत्ति, अलंकार आदि विशेषतायें इस महाकाव्य में सर्वत्र ही सभी उपलब्ध है सरल शैली, ध्वनियों के उत्तम और मनोरम प्रयोग दृष्टिगोचर होते है । महाकाव्य की भाषा में भावाभिव्यक्ति, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, सौदर्न्य प्रतीक विधान, उपचार वक्रता, भाषा सौष्ठव आदि गुण विद्यमान है।

शब्द विधान

तत्सम् शब्द : श्रमणा महाकाव्य में परम्परा अनुसार चार प्रकार के शब्दों का समावेश हुआ है तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी। इसके अतिरिक्त स्वनिर्मित ध्वन्यात्मक पुनरूक्त शब्द एवं लोकोक्तियां और मुहावरें प्रयोग हुये है तत्सम शब्द वे होते है जिन्हें किसी काल की भाषा अपने पूर्ववर्ती साहित्य में प्रयुक्त शुद्ध रूपों को ज्यों का त्यों अपना लेती है श्रमणा में अधिकतम तत्सम शब्द ही प्रयोग हुये है यथा–कक्ष, कष्ट, कवि, कलश, अक्षर, अग्नि, अरूण, अर्चन, विद्या, अहिंसा, सत्य, प्रणव, निमिष, पतिव्रत, दाम्पत्य, सम्मति, प्रस्तर, दूर्वा, दृष्टि, दुख, मयूर आदि। इस प्रकार इक्कीस सर्ग में लगभग चार सौ पृष्ठों में असंख्य तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। सभी राशियां, दिन, ग्रह, नक्षत्र, ॠतुओं, धार्मिक संस्कारों की शब्दाबली, प्राकृतिक वस्तुयें, जातिवाचक, व्यक्तिवाचक तथा सम्बन्ध वाचक नाम, पशु पक्षियों एवं स्थानों के नाम अध्यात्म और दार्शनिक आदि सभी विषयों के शब्द तत्सम् के रूप में ही प्रयुक्त हुये है।

तद्भव : कुछ शब्द ऐसे होते है जो जनता द्वारा प्रयोग होते–होते अपना रूप परिवर्तित कर लेते है जो तत्कालीन साहित्य में प्रयोग होने लगते है ऐसे ही शब्द तद्भव कहलाते है। श्रमणा महाकाव्य में तद्भव शब्दों का भी प्रचुर रूप से प्रयोग हुआ है जैसे निर्बल, सपना, सुहाग, ईर्ष्या, नखत, रात, तीखा, राज, पीर, कान, नाक, परख, पिता, रानी, हिरन, धरती आदि।

देशज शब्द : देशज शब्द का विकास जनता के बीच उनकी बोलियों से होता है जैसे ठिठोली, मचल, ढोना, घोंट, वियार, बावला, लीक, दोना, झोंका, विधाता, घूँघट, विदारा, छाई, जाऊँ, बटाऊँ आदि।

विदेशी शब्द : इसमें विदेशी वे शब्द कहलाते है जो देश के बाहर से आये हो जैसे– व्यापार, राजनैतिक, सांस्कृति आदि कारणवश देश में विदेशियों का आना–जाना रहता है। कालान्तर में उनके शब्द भी जड़ मानस में ग्रहण कर लिये जाते है। श्रमणा महाकाव्य में ऐसे शब्द जिन्हें विदेशी कहा जाये बहुत कम प्रयोग हुये है। पूरे महाकाव्य की दस हजार पंक्तियों में मुश्किल से दो या तीन शब्द ही दिखाई पड़ते है जैसे– अर्क, मेवा शर्मायी।
अर्क–अरबी, मेवा–फारसी, शर्मायी–फारसी

स्वनिर्मित शब्द : श्रमणा महाकाव्य में कुछ ऐसे भी शब्द है जो परिस्थिति वश कवि ने स्वयं निर्मित किये है। यथा–स्व स्नेह, पृष्ठ–1, नृकृति– पृष्ठ–4, सुप्रयास, पृष्ठ–2, अतुल्य– पृष्ठ–3 कृत्सन–पृष्ठ–5, पेटिका–पृष्ठ–5, इस्कन्ध–पृष्ठ–8, डालिका–पृष्ठ–10, पुत्रीजा–पृष्ठ–12, अलब–पृष्ठ–25, इस्मृति–पृष्ठ–35 आदि।

ध्वन्यात्मक शब्द : श्रमणा महाकाव्य में ध्वनि अथवा नाद द्योतक शब्द भी प्रयोग हुये है। यथा छटपटा –पृष्ठ–12, मन्द–मन्द–पृष्ठ–138, गिर–गिर–पृष्ठ–14।

पुनुर्क्त शब्द : पुनुर्क्त शब्दों की योजना भी श्रमणा महाकाव्य में देखने को मिलती है। पुनःपुनः–पृष्ठ–83, त्राहि–त्राहि–पृष्ठ–77, खण्ड–खण्ड–पृष्ठ–75, सत्य–सत्य–पृष्ठ–74, देव–देव–पृष्ठ–74, गृह–गृह–पृष्ठ–123, दिवस–दिवस–पृष्ठ–226, शीघ्र–शीघ्र–पृष्ठ–148 आदि कई पुनुर्क्त शब्दों को इस महाकाव्य में देखने को मिलता है।

लोकोक्तियां तथा मुहावरे : श्रमणा महाकाव्य में मुहावरो और लोकोक्तियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। किसी भी भाषा को सरल एवं बोद्धगम्य तथा संवेदनशील बनाने के लिये लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग महत्वपूर्ण स्थान रखता है किन्तु काव्य में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग एक महत्वपूर्ण कला है। मुहावरें एवं कहावते प्रत्येक जीवित काव्य की अपनी विशेषता हुआ करती है जो श्रमणा महाकाव्य में जगह–जगह प्रयोग हुई है। जैसे– 1.1.हन्ते को हनिये, पाप दोष न गिनियें 2. कदवी के पात, पात में पात 3. समर्थ को नहीं दोष 4. लीक–लीक गाड़ी चले, लीकई लीक कपूत, लीक छोड़ि तीनों चले शायर, सिंह, सपूत 5. मुँह की खाना–आँख उठाना 6. दो शरीर एक प्राण 7. जीवन के लाले पड़ना 8. रेत में नाव चलाना 8. होनहार विरवान के होत चीकने पात 9. जानबूझ कर विष पीना 10. मुख मोड़ना 11. निर्बल के बल राम 12. गिरे हुये को उठाना 13. जिस डाल पर बैठा उसी को काटना 14. जैसे बोओगे तैसा काटोगे 15. आग और रूई का मेल नहीं है 16. जितने मुँह उतनी बातें 17. कौआ चले हंस की चाल। आदि कहावतों और लोकोक्तियों का प्रयोग श्रमणा महाकाव्य में प्रयोग किये गये है।

श्रमणा काव्य में अलंकार योजना

काव्य के कला पक्ष के अंतर्गत अलंकार और चमत्कारिता की प्रवृत्ति का समावेश है। अलंकारो से काव्य की शोभा बढ़ती है। काव्य में अलंकारों

का महत्व तो है किन्तु उनका स्थान क्या होना चाहिये। यह बड़ा ही विवादग्रस्त विषय रहा है। आज के युग में अलंकारो को सर्व प्रथम स्थान तो नहीं दिया जाता किन्तु अवहेलना भी नहीं कर सकते है। कहने का तात्पर्य यह है कि अलंकार काव्य में शब्दार्थ की रमणीयता तथा चमत्कारता के साधन मात्र है। वे काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते है और भाव के स्पष्ट प्रकाशन में सहायता करते हैं।

महाकवि अवधेश जी जिन पर रीतिकाल एवं आधुनिक काल के कवियों का प्रभाव दिखाई देता है। यही कारण है कि उनके काव्य में जहॉ रीतिकाल की परम्परा के अनुसार अलंकारों का प्रयोग हुआ है वहां वर्तमान सूझ–बूझ एवं उर्वरा कल्पना के साथ अधिक सशक्त और स्पष्ट अलंकारिता दिखाई पड़ती है उनके अलंकार एक ओर जहां भाव के प्रस्तुतिकरण में सक्षम है, वही वर्ण विषय को अधिकाधिक सुबोध एवं सरल बनाने में सक्षम है। श्रमणा महाकाव्य में शब्दालंकार और अर्था–अलंकार एवं उभय अलंकार तीनों का प्रयोग हुआ है।

शब्दालंकार : शब्दालंकारों में कुछ विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुन्दरता आती है शब्दालंकारों में कुछ वर्णगत कुछ शब्दगत तथा कुछ वाक्यगत होते है। शब्दालंकार इस प्रकार है– अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष, पुररूक्ति, वीप्सा।

अनुप्रास अंलकार : जब वाक्य के शब्दों में एक या कई व्यंजन एक से अधिक बार आये तो वहां अनुप्रास अलंकार होता है, अनुप्रास अलंकार के प्रयोग में अवधेश जी को बहुत सफलता मिली है श्रमणा महाकाव्य की पंक्ति–पंक्ति में अनुप्रास की छटा दिखाई देती है–

हे रघुपति राघव हे राजाराम तुम्हारी जय हो,
पतितों के पावन कर्ता अभिराम तुम्हारी जय हो।

मिला सबल को बल, केवल निर्बल को बल देने को,
न कि निरीह निर्बल को बल से निबल प्राण लेनें को।

यमक अलंकार : जब एक ही शब्द एक से अधिक बार आये और उसके अर्थ भिन्न–भिन्न हो तो वहां यमक अलंकार होता है–

करी कृपा अवधेश ने, लिखी कथा अवधेश,
रहे सहायक पवनसुत, शारदा और महेश।
भक्त भक्ति की चिन्ता, चिन्ता नहीं की चिन्तामणि है,
वह अपने आराध्य देव रूपी, मणि का ही फणी है।

श्लेष अलंकार : जब एक शब्द एक ही बार आता है पर उसके अर्थ एक से अधिक होते है तो वहा श्लेष अलंकार होता है जैसे –

नृप बोले प्रिय क्यों न एक रथ कर लोगी संचालन,
अति कौशल से दशरथ का जब कर लेती परिचालन।

यहां दशरथ का अर्थ राजा दशरथ तथा दूसरा अर्थ दस रथों से है।

वक्रोक्ति : जब श्रोता वक्ता के कहे वचन श्लेष के कारण या स्वर भेद के कारण अर्थ लगाये तो वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है इसके दो भेद होते है – काकुवक्रोक्ति, श्लेष वक्रोक्ति।

काकुवक्रोक्ति–

मुसका कर शिवालि बोली, तुम पूँछ रही हो ऐसे,
बिना माली के हरी–भरी वाटिका रह सके जैसे।

इन पंक्तियों में केवल उच्चारण के स्वर विकार से अर्थ भेद है, इसलिये काकुवक्रोक्ति हुई।

श्लेष वक्रोक्ति–

अधिक कसा कटिबन्ध इसलिये, वक्ष स्थल उन्नत है,
अंग–अंग पर कुसुम करो कि, कोमलता भी नथ है।

उन्नत वक्ष स्थल में श्लेष है। इसलिये यहां श्लेष वक्रोक्ति हुई।

पुनरोक्ति–

राम हमारे बन न सके तो, मैं उनकी बन जाऊँ,
जन्म–जन्म तक राम कार्य में, उनका हाथ बटाऊँ।
प्रिय वृतान्त सुनाया प्रियवर, मन भावन, मनभावन,
किया आपका दर्श हुआ हम सबका तन मन पावन।

अर्थालंकार : जहां यह चमत्कार अर्थ में होता है वहां अर्थालंकार माना जाता है। इसके अन्तर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार आते है। श्रमणा महाकाव्य में अर्थ अलंकार भी पर्याप्त रूप से दिखाई देता है।

उपमा अलंकार : किसी वस्तु या व्यक्ति की तुलना किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु से उसके रूप गुण आदि की समता दिखाते हुये की जाती है तो वहा उपमा अलंकार होता है उपमा अलंकार के चार अंग होते है। उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म। जिस वस्तु की तुलना किसी दूसरी वस्तु से करते है उसे उपमेय कहते है। जिस वस्तु से तुलना की जाती है उसे उपमान कहते है। जिस शब्द के द्वारा समानता दिखाई जाती है उसे वाचक कहते है और जिस गुण में समानता दिखाई जाती है उसे धर्म कहते है।

सुछविमान मुख साँवरा सा सलौना,
किसी पूर्ण शशि, पुत्र की पुत्री जासा।

इन पंक्तियों में श्रमणा का मुख उपमेय है, चन्द्रमा उपमान है सा– वाचक है, सलौना, साँवरा धर्म है।

उत्प्रेक्षा अलंकार : जिस कथन में उपमेय में ही उपमान की संभावना कर ली जाये वहां उत्प्रेक्षा अलंकार होता है–

सुनकर की शुक्र की बात कपोलो पर अरूणाई छाई,
मानो लज्जा ने भी सत्यापन की छाप लगाई।

रूपक अलंकार : जहां उपमेय और उपमान एक रूप हो जाये वहां रूपक अलंकार होता है—

कमल पत्र थी कुटि मारकण्डेय बने लक्ष्मण थे,
शब्दों से अव्यक्त बनें वे बड़े विलक्षण क्षण थे।

इन पंक्तियों में कमल पत्र में कुटि का आरोप किया गया है और लक्ष्मण में मारकण्डेय का रूपक है।

अतिश्योक्ति अलंकार : जहां किसी वस्तु या पदार्थ का इतना बढ़ा—चढ़ा कर वर्णन हो कि लोक मर्यादा का उल्लधंन हो जाये वहां अतिश्योक्ति अलंकार माना जाता है—

जिसका नाम श्रवण कर, भय से लोक रूदन करता है,
चन्द्र उष्मा सूर्य शीत, विपरीत वमन करता है।
खेला करता है जो सागर से, ज्यों गज शिशु पोखर से,
भू फल देती जिसके भय से भृकुटी से घन बरसे।

इन पंक्तियों में चन्द्रमा से गर्मी और सूर्य से शीतलता का निकलना एवं सागर तथा पोखर तथा भय से पृथ्वी का फल देना और भृकुटी से वर्षा होना अतिश्योक्ति अलंकार है।

व्यक्तिरेक अलंकार : जहां उपमेय को उपमान से अधिक बतलाया जाये वहां व्यक्तिरेक अलंकार होता है —

खुले आगतों के दृग दोनों, बन्द हो गये ऐसे,
बिज्जु कौंध की चकाचौध बन्द हुये हो जैसे।

यहां उपमेय श्रमणा का मुख है और विद्युत उपमान है। विद्युत से भी अधिक चमक श्रमणा के मुख में आरोपित की गई है। अतः यह व्यक्तिरेक अलंकार है।

संदेह अलंकार : जब किसी वस्तु या घटना में समानता के कारण अन्य वस्तु या वस्तुओं की संभावना जान पड़े पर उन संभावना का निश्चय न हो सके वहां संदेह अलंकार माना जाता है जैसे –

भूल गई क्या वचन कैकयी, मुकर गये क्या नृप वर,
याकि रूक गये राम गाधि सुत मख कमी रखवाली पर।

यहां श्रमणा को संदेह है कि राम या तो निकल गये या कैकयी अपनी वचनों से मुकर गई है, राम विश्वामित्र की यज्ञ की रक्षा में रूक गये है। श्रमणा को संभावनाओं के निश्चय में संदेह है। अतः संदेह अलंकार की पुष्टि होती है।

भ्रान्तिमान अलंकार : जब किसी प्रकार की समानता के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु का भ्रम हो जाये तो वहां भ्रान्तिमान अलंकार होता है जैसे –

पीछे–पीछे हंस चला आ रहा, उसी गति क्रम में,
अलकों से गिरते जल कर चुगने को मुक्ता भ्रम में।

इस पंक्ति में हंस को जल की बूँदों में मोती का भ्रम हो गया है। अतः यहां भ्रान्तिमान अलंकार है।

दृष्टांत अलंकार : जब किसी सामान्य या विशेष वस्तु का कथन करके उसके समान ही दूसरा वाक्य कहा जाये और उनमें बिम्व प्रतिबिम्व भाव हो जैसे –

देह आत्मा का जग में बस इतना ही नाता है,
सरित पार करने को पंथी ज्यों नौका पाता है।

यह नौका रूपी तन मिट्टी का तन एक खिलौना,
भीतर तो अतीव दूषित है उपर लगे सलौना।

इन पंक्तियों में आत्मा का पंथी से और नौका का देह से दृष्टांत किया गया है। अतः यहां दृष्टांत अलंकार है।

श्रमणा महाकाव्य में रीति एवं वृत्ति योजना:

रीति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा वामन ने की है गुण विशेष के अनुकूल शब्द रचना को रीति कहते है, रीति का सम्बन्ध गुणों के साथ और गुणों का रसों के साथ होता। अतः अप्रत्यक्ष रूप से रीति में भी रसों का महत्व है। रसों के उपकारक स्थिर धर्म को गुण कहते है। भामह ने भी रीति को महत्ता दी किन्तु उन्होंने रीति के बदले मार्ग शब्द का प्रयोग किया है। उसमें वैदर्भ मार्ग की प्रशंसा करते हुये कहते है। इसी प्रकार दण्डी ने भी गिरा मार्ग ही रीति के लिये प्रयोग किया है और भामह की तरह दो मार्ग वैदर्भ और गौड़ीय बतलाये।

इस प्रकार गुणों के अनुकूल पद रचना रीति कहलाती है। शरीर की सुघड़ता का सुन्दरता में जो महत्व है, वही काव्य में रीति का है। आचार्यो ने रीतियां भी गुणों के समान तीन मानी है। 1. वैदर्भी 2. गौड़ी 3. पांचाली ये तीनो रीतियां क्रमशः माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों के अनुकूल ही शब्दों की योजना का नाम है।

वैदर्भी : साहित्य दर्पणकार पण्डित विश्वनाथ में वैदर्भी का लक्षण बताते हुये कहा है कि माधुर्य व्यंजक वर्णो से युक्त तथा समासों से रहित ललित पद रचना को वैदर्भी रीति कहते है। इसको उपनागरिक वृत्ति भी कहते है। श्रमणा महाकाव्य में वैदर्भी रीति एवं उपनागरिका वृत्ति के कुछ उदाहरण कवि ने व्यक्त किये है–

कुछ दिन वाद राम आयेंगे धन्य भाग्य तब होगा,

हाय न जाने वह अति सुख कैसे जायेगा भोगा।
कोई मन में साध नहीं है, कैसे मैं कह दूँगी,
वह अटूट सौन्दर्य लघु दृगों में कैसे भर लूँगी।

गौड़ी : ओज प्रकाशक वर्णों से युक्त एवं समासों के आधिक्य से युक्त आडम्बर पूर्ण बन्ध अथवा पद रचना को गौड़ी रीति कहते है इसका सम्बन्ध ओज गुण से है। इसे पुरूषावृत्ति भी कहते है। श्रमणा महाकाव्य में गौड़ी रीति के कुछ उदाहरण कवि ने व्यक्त किये है–

यहां महारानी कैकयी ने मुझकों भिजवाया,
महाराज के साथ युद्ध में जाने को ही आया।
सुनकर विषमय कोतूहल की खिचीं हृदय में रेखा,
चकित दृगों से चक्रवर्ती ने वीर पुरूष को देखा।

पांचाली : ओज और माधुर्य व्यजंक वर्णो के अतिरिक्त वर्णो से युक्त पंचम वर्ण वाली पद रचना को पांचाली रीति या कोमला वृत्ति कहते है इसमें र, ल, स, ह, ब, य, आदि शब्दों का बाहुल्य रहता है –

एक बार जब विपिन प्रान्त में ऋतु बसंत आयी थी,
जल, थल, नभ पर नव उमंग की मुक्ति दीप्ति छाई थी।
शीतल मंद वायु में भू की सुखद सुगन्ध मिली थी,
ऋृतु पति का आगमन निमंत्रण जग को बांट चली थी।

उपरोक्त पंक्तियों में पांचाली रीति प्रतीत होती है।

श्रमणा महाकाव्य में शब्द शक्तियां :

शब्द एवं अर्थ के सम्बन्ध में विचार करने वाले तथ्य को शब्द शक्ति कहते है। शब्द तथा वाक्य की सार्थकता उनके अर्थ में है। जिस शक्ति या व्यापार द्वारा अर्थ का बोध होता है उसे शक्ति कहते है। शब्द की शक्तियों के तीन भेद बताये गये है। 1. अभिधा 2. लक्षणा 3. व्यंजना।

अभिधा : शब्द की जिस शक्ति के कारण किसी शब्द का साधारण तथा प्रचलित या मुख्य सांकेतिक अर्थ गृहीत होता है उसे अभिधा कहते है। साक्षात् सांकेतिक अर्थ को बतलाने वाली शब्द की प्रथम शक्ति को अभिधा कहते है, वह शब्द वाचक कहलाता है। हिन्दी रीति कवि देव ने तो अभिधा शब्द शक्ति को ही उत्तम स्वीकार कर इस वृत्ति को शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया –

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन,
अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन।

अभिधा वाक्य के अंतर्गत किसी शब्द के केवल सांकेतिक अर्थ का बोध कराती है। परन्तु एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते है किस शब्द का कहां क्या अर्थ लगता है इसका निर्णय सहयोग, वियोग, सहचर्य, विरोध, अर्थ, प्रकरण, प्रसंग, चिन्ह, सामर्थ, औचित्य, देशकाल, बल व स्वर भेद से किया जाता है इस प्रकार अभिधा शक्ति के द्वारा प्राप्त अर्थ वाच्यार्थ या मुख्यार्थ कहलाता है और इस अर्थ को प्रकट करने वाला शब्द वाचक। व्यवहार में एक शब्द से कोई निश्चित अर्थ मान लिया जाता है जिस शब्द के द्वारा बिना किसी रूकावट के तत्काल किसी विशेष अर्थ का संकेत के द्वारा बोध होता है यही बोध अर्थ का वाचक कहा जाता है।

श्रमणा महाकाव्य में अभिधा प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है इसका सम्बन्ध प्रसाद गुण से है जैसे –

अधम भई तो का बस मेरा,
जाय हेरवे खों जग तरसें, इन्द्र सभा सौं में हरि हेरों।
सुर औं तान न आन भई कछु, थिरकत हू पग भयों न डेरों,
कोप गये सुरराज भली भई, मुकत भयी बाजौन निबेरौं।
जा कारन अवधेश भई जो, सोई भलौ अब करौं मेरों।

इस पद का मुख्यार्थ विष्णु है।

लक्षणा शक्ति : श्रमणा महाकाव्य में अनेक प्रसंगों में लक्षणा शक्ति का प्रयोग मिलता है। जिस स्थान पर मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित होती है तथा सीधे रूप उसका अर्थ ग्रहण नहीं हो पाता है वहां शब्द का रूढ़ि या प्रसंग के सहारे अर्थ निकाल लिया जाता है ऐसी दशा में शब्द का अर्थ व्यापार जिस शक्ति के द्वारा ज्ञात किया जाता है उसे ही शब्द लक्षणा शक्ति कहते है इससे स्पष्टतः रूढ़ि अर्थ निकलता है कि मुख्यार्थ की बाधा रहने पर रूढ़ि या प्रयोजन के सहारे जहां पर अन्य अर्थ लक्षित होता है वहां लक्षणा शक्ति कार्य करती है लक्षणा के व्यापार के लिये तीन तत्व आवश्यक है।

1. मुख्यार्थ का बाधित होना
2. मुख्यार्थ तथा लक्षणा का योग
3. रूढ़ि या प्रयोजन

निष्र्कष रूप से कहा जा सकता है कि लक्षणा में मुख्यार्थ तथा लक्षणा का

परस्पर योग एवं रूढ़ि या प्रयोजन में से किसी एक का होना भी आवश्यक है। अर्थात् किसी वाक्य या पद में जो कहा जाये वह लक्षणा के आधार पर किसी अन्य पर आरोपित हो कुछ उदाहरण निम्नवत् है :–

1. यह गज तो मानव संगति से विछुड़ यहां आया था
इस कारण ही उसने ऐसा दुष्कृत दिखलाया था।

2. तरू समीप के वन न सके चन्दन तो कैसा चन्दन,
वह कैसा पारस जो लोहा बना न पाया कंचन।

उपरोक्त प्रथम उदाहरण में लड़ाकू गज के बारे में कहा गया है किन्तु यहां लक्ष्य मानव ही है। द्वितीय उदाहरण में चन्दन और वैद्य के संदर्भ में कहा गया है किन्तु लक्षणा से अन्य वृक्षों को और रोगियों को स्वस्थ्य न कर पाने की क्षमता पर व्यंग लक्षित होता है।

उपरोक्त उदाहरणों में लक्षणा शक्ति का भाव दृष्टव्य होता है।

श्रमणा महाकाव्य में गुणों का स्वरूप :

काव्य के शोभाकारण धर्म गुण कहलाते है भाषा की सबलता और भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से गुणों का अपना विशेष महत्व है। वामन का कथन है–" काव्य शोभायाः करतारों धर्मा गुणः " अर्थात् आत्मा के शौर्य आदि गुणों के समान काव्य में भूतरस की उत्कृष्टता बढ़ाने वाले अचल स्थिति धर्म गुण कहलाते है। संस्कृत और हिन्दी के आचार्यो में गुणों के तीन भेद प्रतिपादित किये है। 1. माधुर्य 2. ओज 3. प्रसाद

माधुर्य गुण : काव्य प्रकाश कार्य के अनुसार हृदय को द्रवित करने वाली आह्लादकता ही माधुर्य है। 1. संयोग श्रंगार से करूण, करूण से विप्रलम्भ तथा विप्रलम्भ से शांत में इसी गुण की अधिकाधिक अनुभूति मानी गई। 2. इस गुण के लिये ट वर्णो तथा समासों का अभाव र–कारण कार और अनुस्वार युक्त वर्णो का प्रयोग आवश्यक है।

यों कह, श्रमण लगी खीचनें सर को रोते–रोते
किन्तु विवश मानव होनी तो होती होते होते।
अह! गौतमी, के शुक ने भी, मधुर वृतान्त सुनाया
नारी के प्रति वे कितने उदार है मनकों भाया।

श्रमणा महाकाव्य के उपरोक्त छंद माधुर्य गुण के उदाहरण है।

श्रमणा महाकाव्य में ओज गुण : चित्त में उत्साह के भाव को उदित करना ओज गुण का मुख्य घ्येय होता है संयुक्ताक्षरों, द्वित्व वर्णों, ट वर्गो से युक्त शब्दों की इसमें योजना रहती है। ओज गुण का प्रयोग श्रमणा महाकाव्य में अनेक स्थल पर दृष्टिगोचर होता है। कुछ उदाहरण निम्न है

.अश्वारूढ़ कुमार भील भी, तत्क्षण दृष्टि पड़ा था,
जो मूर्च्छित वराह लक्ष्य पर साधे धनुष खड़ा था।
रोष पूर्ण स्वर में श्रमणा ने कहा, बांण मत छोड़ो,
पंचवटी वन के अपराधी, मर्यादा मत तोड़ो।
हम निषाद के पुत्र, खेलना मृगया धर्म हमारा,
शवरराज है कौन! और क्या परिचयन कहो तुम्हारा।
दण्ड भोगने को भी तुमकों, हम भी बाध्य करेगें,
इस उदण्ड कार्य का फल भी, हम ही तुमको देगें।

श्रमणा महाकाव्य में प्रसाद गुण : जिस गुण के कारण रचना का अर्थ तुरन्त समझ में आ जाये, उसका पूरा प्रभाव चित्त पर पड़ जाये उसे प्रसाद गुण कहते है यदि कवि अपनी रचना में ऐसे शब्दों का प्रयोग करें जिनका अर्थ सुनने के साथ ही समझ में आ जाये तो उसे प्रसाद गुण से पूर्ण कहा जाता है। ओज एवं माधुर्य गुणों के रसों का क्षेत्र सीमित है। परन्तु प्रसाद गुणों का प्रयोग रस की विशेष सीमा में बंध कर नहीं रहता है लगभग सभी रसों में देखने को मिलता है। इसका मूल कारण यह है कि ओज और माधुर्य का भाषा के वाहरी रूप से ही सम्बन्ध रहता है जबकि प्रसाद का अर्थ से अधिक सम्बन्ध होता है।

वन पशुओं के मधुर दुग्ध, मिश्रित मेवें के दोनों
कर में लेकर खाती थी, संग खाते थे मृग छोंने।
भिन्न–भिन्न बोलियाँ बोलकर, विहंग बुला लेती थी,
एक पंक्ति में बिठा सभी को समुद्र खिला देती थी।
सरल बालिका के स्वभाव में ही समभाव भरा था,
इससें जड़–चेतन में उसके हित चित चाप भरा था।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में तीनों गुणों–माधुर्य, ओज, प्रसाद का समावेश पर्याप्त रूप से सहज ही हुआ है। इनमें माधुर्य सामान्यतः उन सभी

बिम्बों की अभिव्यक्ति में आया है जो अत्यंत कोमल और मुधर रहे है तथा ओज का सन्निवेश उन बिम्बों की अभिव्यक्ति में हुआ जो स्वभावतः चित्त विस्तारक है। प्रसाद गुण का प्रयोग साधारतः सभी प्रकार के विषयों में हुआ है और यह परिमाण की दृष्टि से सर्वाधिक है। श्रमणा महाकाव्य की यह विशेषता है कि इसमें प्रसाद गुण ज्यादा दिखाई पड़ता है जिसके कारण यह महाकाव्य जन सामान्य का कण्ठ हार बन गया है।

श्रमणा महाकाव्य में दोष : सम्पूर्ण संसार गुण और दोषों से भरा पड़ा है अतः कोई काव्य में गुण दोष होना संभव है। इसके पूर्व श्रमणा महाकाव्य के गुणों की विवेचना की जा चुकी है और अब दोषों पर भी दृष्टि डालना परम आवश्यक है। जब एक दूसरे का विरोध करने वाले भाव या रस उत्पन्न हो जाते है तो रस दोष माना जाता है। श्रमणा महाकाव्य में निम्नलिखित दोषों को देखा जा सकता है। 1. च्युति संस्कृति दोष 2. श्रुति कटु दोष 3. अप्रयुक्त दोष 4. अक्रमत्व दोष 5. अप्रीतत्व दोष 6. न्यूनपदत्व दोष 7. अधिक पदत्व दोष 8. अश्लीलत्व दोष 9. क्लिष्टित्व दोष 10.ग्रामत्व दोष।

श्रमणा महाकाव्य में ये दोष सभी सर्गों में देखने को मिलते है। आचार्यों ने भिन्न–भिन्न प्रकार के दोष माने है जिनमें कुछ शब्दगत, कुछ अर्थगत तथा रस सम्बन्धी है। काव्य में जब वाक्य का अर्थ ठीक–ठीक समझ में नहीं आता है तो उसे दोष की दृष्टि में लाकर खड़ा कर देते है।

श्रमणा महाकाव्य में छंद विद्यान :

कविता और छंद का सम्बन्ध बड़ा ही घनिष्ट रहा है। स्वर लययुक्त भावानुकूल छंदों से भाषा में गति आ जाती है तथा पाठक का आकर्षण बड़ जाता है। लय ही प्रत्येक छंद का प्राण है। तंत्री स्वर एवं लय प्रधान होती है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक छंद आता है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही छंद आवश्यक समझा जाता रहा है। दोहा, चौपाई, छप्पय, पद, कवित्त,

सवैया आदि में उस समय कविता होती रही। छंद केवल उत्तेजना भावोद्दीपन एवं प्रभविष्णुता में ही सहायक नहीं अपितु स्वयं लयाधार निश्चित करता है। छंद का नियमन अनुभूति के द्वारा ही होता है। तथापि इसका प्रयोग विषय और तद्नुरूप व्यापार के समान प्रायः नवीन अथवा मौलिक न होकर परम्परायुक्त हुआ करता है इसके मूल में कवि के परम्परागत प्रयोग जन संस्कार ही क्रियमाण रहते है।

श्रमणा महाकाव्य में प्रायः सभी मान्यताओं को स्थान दिया गया है और आधुनिक छंद विधानों का भी समावेश हुआ है। श्रमणा में अधिकतर सार छंद का प्रयोग हुआ है। इसमें सोंलह और वारह मात्राओं की यति से अठ्ठाईस मात्रायें होती है। इस छंद के प्रयोग में अवधेश जी को पर्याप्त सफलता मिली है।

सार छंद

16+12=28

नारी सदा आश्रिता रहकर ही शोभा देती है,
लता उच्चता पाती है, जब तरू आश्रय लेती है।
बिना नीर के सरिता भी क्या, सरिता रह सकती है,
बिना कूल के क्या कोई भी धारा वह सकती है।

रूप माला

14+10=24 मात्राऐं तथा अन्त में लघु।

प्रणव की प्रतिमूर्ति यह गुरू सृष्टि का आधार,
क्यों घृणा का पात्र अब तक वह मनुज–अवतार।
आज मानव ही मनुज पर हो रहा क्यों भार,
यह मनुज ही मनुज का अब ढो रहा क्यों भार।

रोलाः जिसकी मुख्य छवि निरख शंभु सौभाग्य मनाते,

कर–कर अति मनुहार यदा, संस्पर्शन पाते।
धात्री फलसा ध्यान ज्ञान करतल कर देता,
भाव विचार चेतना, घृति, स्मृति, भर देता।

घनाक्षरीः साहित्य में घनाक्षरी तीन प्रकार से प्रयोग की गई है। प्रथम घनाक्षरी इसमें सोंलह–पन्द्रह की यति से इक्कतीस वर्ण होते है और चार चरण होते है।
द्वितीय घनाक्षरी में सोंलह–सोलह की यति से बत्तीस वर्ण होते है। तृतीय घनाक्षरी में कुल तैतीस वर्ण होते है एवं अन्त में तीन लघु वर्ण होते है।

श्रमणा महाकाव्य में घनाक्षरी छंद का ही प्रयोग हुआ है किन्तु सप्तम सर्ग के मंगला चरण में पन्द्रह–पन्द्रह की अति से तीस वर्ण की भी घनाक्षरी का भी प्रयोग हुआ है। जो श्रमणा की मौलिक उद्‌भावना है।

16+12=28

वरवैं छंद :

12+7=19

चक्षु से अग्राह्य भवान बह,
जो प्रमाण से हुआ प्रत्यक्ष है।
वही पाता रत्न राशि अनंत को,
खोजने में हो गया जो दक्ष है।

इन उपरोक्त छंदों के अलावा यथा स्थान भाव संगति के लिये तुलसी और सूर की भांति भी पद दिये गये है।

प्रभाती छंद : छब्बीस मात्राओं की दो–दो पंक्तियां मिलकर प्रभाती छंद बनाती है। श्रमणा महाकाव्य में यह छंद प्रस्तुत किया गया है–

जय–जय श्रमणे माता,
ज्ञान कर्म की प्रतिमा, जन–मन प्रेम भक्ति पाता।

लेकिन जन्य भक्ति का जग को नव संदेश दिया,
दलित उपेक्षित निबल जनों का मार्ग प्रशस्त किया।
दीन हीन अबलाओं को तुमसे आधार मिला,
जप तप पूजन अर्चन का सबकों अधिकार मिला।
शंकर के वरदान रूप तुमने अवतार लिया,
शबर पिता को सत्य अहिंसा का उपदेश दिया।

दोहा छंदः *श्रमणा महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अंत में दोहे दिये गये है* दोहे में 13–11 की यति से चार चरण होते है। जैसे–

भारतीय संस्कृति में निहित, सर्व हितैषी इष्ट,
अर्थ अनर्थ किया गया, हुये इसलिये भ्रष्ट।
करि कृपा अवधेश ने लिखि कथा अवधेश
रहे सहायक पवनसुत, शारदा और महेश।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में प्रधानतः, सारछंद प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त रूपमाला, रोला, उल्लाला, घनाक्षरी रूप, वरवै, प्रभाती तथा दोहा छंदो का प्रयोग हुआ है। इसके साथ–साथ कुछ ऐसे छंद है जो कवि द्वारा स्वयं निर्मित किये गये है जिनका विस्तार पूर्वक उल्लेख किया जा चुका है।

श्रमणा महाकाव्य में प्रतीक एवं बिम्ब प्रधानः

प्रतीक योजना : प्रतीक एवं बिम्ब काव्य सरिता के ऐसे मनोहर दो कूल है जिनमें काव्य धाराओं के सोष्ठव का भलीभांति दर्शन होता है। जब अप्रस्तुत को प्रस्तुत के रूप में समाहित किया जाता है तो उसे प्रतीक कहते है। इसी प्रकार जब अर्मूत का मूर्त रूप में प्रतिपादन होता है तो उसे बिम्ब कहते है। प्रतीक में रूपक का समावेश होता है तो उसे बिम्ब कहते है, प्रतीक में रूपक का समावेश होता है और बिम्ब में छाया प्रतीत होती है।

श्रमणा महाकाव्य में स्थान–स्थान पर प्रतीक योजना और बिम्ब विधान के दर्शन होते है:–

भक्ति के वश भक्त, आया भक्त वश भगवान,
या तपस्या के सफल हित आ गया वरदान।
दो खुले दो बंद होने को हुये दृग बाध्य,
साधना थी साध्यरत्, थे साधना रत साध्य।

इन पंक्तियों में प्रतीक श्रमणा को ध्यान के प्रतीक राम का साक्षात्कार हुआ क्योंकि धारण की परिपक्व अवस्था में ही ध्यान की सिद्धि होती है। इसी प्रकार आशा के फलीभूत होने पर विश्वास आता है और साधना की सम्पूर्णता पर ही साध्य की प्राप्ति होती है। यहां आशा के प्रतीक श्रमणा को विश्वास राम की प्राप्ति हुई, साधना श्रमणा ने साध्य राम को प्राप्त किया। इसी प्रकार तपस्या और वरदान श्रमणा और राम के प्रतीक है, ऐसे विरह और वेदना प्रतीक्षा की समाप्ति पर स्फूर्ति का होना स्वाभाविक है।

बिम्ब विधानः जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि बिम्ब का अर्थ मानवीय भावनाओं प्रकृति पर आरोपण करके रागात्मक वृत्ति का प्रकट करना है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते है कि प्रकृति को मानवीय करण रूप में प्रस्तुत करना ही बिम्ब प्रधान कहलाता है। श्रमणा महाकाव्य में ऐसे अनेकों बिम्ब विधान दृष्टिगोचर होते है।

रूप और लावण्य सिमिट कर एकाकार हुआ था,
ओज पिता का, माँ का यौवन फिर साकार हुआ था।

इन पंक्तियों में श्रमणा के यौवन का चित्र उपस्थित किया गया है प्रतीत होता है कि पिता का ओज और माँ का यौवन पुनः साकार हो गया। यहां दिखाई पड़ता है कि ओज और यौवन का प्रतिबिम्ब श्रमणा में आरोपित किया गया है। यह बिम्ब प्रधान सर्वथा मौलिक है।

उपरोक्त पक्तियाँ पाठक या श्रोता के हृदय पर एक ऐसा बिम्ब छोड़ती है जो मन मस्तिष्क में साकार हो उठता है। इन छंदों में बिम्ब विधान योजना सजीव हो उठती है। इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में प्रतीक योजना और बिम्ब विधान सर्वत्र देखने को मिलता है। प्रकृति का चित्रण सर्वथा मौलिक है जो अन्य काव्यों में कम ही दिखाई पड़ता है।

सन्दर्भ सूची (पंचम अध्याय)

1. भाषा विज्ञान – भोलानाथ तिवारी – पृष्ठ– 1,2
2. भाषा विज्ञान – भोलानाथ तिवारी – पृष्ठ– 143, 144
3. श्रमणा महाकाव्य – सिंहवालोकन – पृष्ठ– 23–24
4. हिन्दी में – श्रमणा महाकाव्य, कवितावाला, नाटिका–वाटिका आदि
5. ब्रज भाषा में – ब्रज नन्दन, बुन्देली में बुन्देल भारती, उर्दू भाषा में उर्दू नज्में।
6. श्रमणा महाकाव्य – पृष्ठ –4 व 7
7. रीति कालीन रीति का वियोग का काव्य शिल्प – डॉ0 महेन्द्र–पृष्ठ 480
8. सूर और उनका साहित्य – हरिवंश लाल शर्मा – पृष्ठ– 308
9. भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा– डॉ0 नागेन्द्र – पृष्ठ– 2/1
10. सूर और उनका साहित्य – डॉ0 हरिवंश लाल शर्मा – पृष्ठ– 296
11. रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता–डॉ0 नगेन्द्र–पृष्ठ 89
12. सूरदास का काव्य वैभव – मुंशी राम शर्मा– पृष्ठ– 38
13. सूर और उनका साहित्य– डा0 हरिवंश लाल शर्मा – पृष्ठ– 298
14. चिन्तामणि – भाग–1, रामचन्द्र शुक्ल – पृष्ठ– 247
15. काव्य प्रकाश – मम्मट – पृष्ठ– 316
16. रस गंगाधर – पं0 जगन्नाथ द्वितीय आनन
17. शब्द रसायन – देव – पृष्ठ– 62
18. साहित्य दर्पण – विमला टीका – द्वितीय कारिका – पृष्ठ– 28
19. काव्यालंकार – सूत्रवृत्ति – वामन
20. काव्य प्रकाश – ग्रन्थ – मम्मट
21. साहित्य दर्पण – विश्वानाथ – अष्टम परिच्छेद
22. काव्य प्रदीप – राम बहोरी शुक्ल – –पृष्ठ –100
23. निराला का काव्य – डॉ0 संतोष गोयल – पृष्ठ –297
24. कवि पदमाकर और उनका युग – डॉ0 ब्रज नारायण सिंह – पृष्ठ 4/9
25. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना– डॉ0 पुत्तू लाल शुक्ल– पृष्ठ10

अध्याय षष्ठम

श्रमणा में सांस्कृतिक निरूपण

मानव एक सामाजिक प्राणी है। मानव के पास संस्कृति भी है। इसी कारण उसे एक सामाजिक – सांस्कृतिक वा तार्किक प्राणी माना जाता है। पशुओं के पास संस्कृति नहीं होती, यद्यपि वे भी समाज में रहते है। मानव संस्कृति का विकास कर सकता है तथा इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित भी कर सकता है, इसलिये संस्कृति को मानव निर्मित कहा जाता है। वस्तुतः मानव की सफलता की कुंजी संस्कृति ही है तथा इसी के आधार पर मानव समाज को पशु समाज से श्रेष्ठ समझा जाता है यह कथन उचित ही है कि '' जहॉ मानव है वही संस्कृति होती है।'' मनुष्य चाहे अफ्रीका के अंधकारमय प्रायद्वीप में हो, चाहे यूरोप, अमेंरिका या एशिया में, चाहे वे नगरों में हो या गांव व जंगलों, हर स्थान पर वे संस्कृति का निर्माण कर लेते है मनुष्य अपनी आवश्यकआतों की पूर्ति संस्कृति के माध्यम से करते है। संस्कृति में धर्म, कला, विज्ञान, विश्वास, रीति–रिवाज, रहन–सहन तथा मानव निर्मित सभी वस्तुऐं सम्मिलित की जाती है।

संस्कृति का स्वरूप – प्रत्येक समाज की अपनी सामूहिक जीवन प्रणाली होती है। उसके कला, विश्वास, ज्ञान आदि विशेष ढंग होते है जिन्हें हम सामान्य अर्थो में संस्कृति के अंतर्गत रख सकते है। मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक साधनों का निर्माण किया है इन साधनों को दो भागों में बांटा जा सकता है – भौतिक व अभौतिक। इन दोनो का सम्बन्ध संस्कृति से ही है। संस्कृति शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – 'सम' तथा 'कृति' । सम उपसर्ग का अर्थ है 'अच्छा' तथा 'कृति' शब्द का अर्थ है 'करना' । इस अर्थ में यह 'संस्कार' का

समानार्थक है। हिन्दु जीवन में जन्म से मृत्यु तक अनेक संस्कार होते है जिससे जीवन परिशुद्व होता है व्यक्ति की आंतरिक व बाहरी क्रियाऐं संस्कारों के अनुसार होती है। वस्तुतः संस्कृति एक जटिल अवधारणा है इसे एक ऐसी व्यवस्था माना जा सकता है जिसमें व्यवहार के ढंग, भौतिक अभौतिक प्रतीक परम्पराऐं, ज्ञान, विश्वास, अविश्वास आदि समाहित होते है। संस्कृति सदैव एक ऐसी वस्तु है जिसे अपनाया जा सके, जिसका उपयोग किया जा सके जिस पर विश्वास है जिस पर अनेक व्यक्तियों का अधिकार हो तथा जो अपन असिस्तत्व को बनाये रखने के लिये सम्पूर्ण समूह के जीवन पर निर्भर करती हो। परन्तु प्रत्येक सभ्यता के क्रमिक विकास में एक स्तर आता है जब वह विशेष मानसिक, नैतिक और अध्यात्मिक आदर्शो का निमार्ण कर लेता है। यह उसके सामूहिक जीवन में इस तरह घुल मिल जाते हैं कि समस्त सामाजिक व्यक्ति इन उदात्त और सूक्ष्म विशेषताओं में रंग जाते है। उसके सभ्य जीवन की समस्त सामग्री इन उच्च ध्येयों की पूर्ति का एक साधन मात्र बन जाती है। उसकी समस्त रचनात्मक कृतियॉ इन 'संस्कृत', निखरे हुए, उद्‌देश्यों के प्रतीक हो जाते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक और शिक्षा विशेषज्ञ डा0 हाईटहेड (Dr.Whitehead) के शब्दों में 'संस्कृति की परिभाषा है मानसिक प्रयास, सौन्दर्य और मानवता की अनुभूति '– **(Culture is activity of thought and receptiveness to beauty and human feelings)** – दूसरे शब्दों में, सत्य की खोज, सौन्दर्य की खोज, अभिव्यक्ति और मानव–प्रेम का विकास संस्कृति के प्रमुख तत्व हैं। 'सत्यं, शिव, सुन्दरम्' ही संस्कृति का महामन्त्र है। 'सभ्यता' के सूक्ष्म, शुद्ध और उदात्त तत्वों के रचनात्मक विकास और पल्लवन का नाम 'संस्कृति' है।

सभ्यता का विशेष चित्रण आसान होता है परन्तु संस्कृति विशेष का वास्तविक बोध तथा विवेचन केवल सुहृदय प्रयास, निष्पक्ष अनुसंधान और सूक्ष्म चिन्तन द्वारा ही सम्भव है। 'सभ्यता' देह है तो 'संस्कृति' उसमें अनुप्राणित आत्मा। जैसे देह का वर्णन सरल है परन्तु आत्मा का दिग्दर्शन कराना कठिन है, इसी प्रकार संस्कृति केवल अनुसूचित विवरण का विषय नहीं है। उसका अध्ययन तो एक सूक्ष्म सार ग्रहण मात्र है। इतिहास का मौलिक विषय यही अध्ययन है। संस्कृतियों के उदय, विकास और विनाश की खोज ही इतिहास के विद्यार्थियों का श्रेयस्कर कार्य है।

संस्कृति और सभ्यता– सभ्यता के अंतर्गत वे चीजे आती है जिनका उपयोग करके व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है सत्यता का सम्बन्ध का उन भौतिक साधनो से है जिनमें उपयोगिता का तत्व पाया जाता है, जैसे कि उद्योग, आवागमन के साधन, मुद्रा इत्यादि । मानव की विविध प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनो या माध्यमों को हम सभ्यता कहते है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के माध्यम या साधन सभ्यता की परिचायक होते है। सभ्यता के अंतर्गत उन समस्त साधनों को सम्मिलित किया जाता है, जो मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति तथा मानवीय जीवन के लिये आवश्यक होते है।

साधारणतः सभ्यता और संस्कृति दोनो शब्द पर्यायवाची समझे जाते हैं। अंग्रेजी भाषा में भी culture और civilization इसी प्रकार प्रयोग में आते हैं। परन्तु शास्त्र की दृष्टि से, इन दोनों में अन्तर है। जीव मात्र के तीन मुख्य एहिक ध्येय हैं–असन, वसन, निवसन। जब से मनुष्य इसी हेतु वह विविध सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और आर्थिक

यंत्रों और साधनो का अन्वेषण करता रहा है। इनका कम सुदूर अतीत से, जब उसने पत्थर के हथियार और औजार बनाना जान पाया था, आज तक आधुनिक हवाई जहाज, रेल, तार, लोहे और कपड़े के विशाल कारखाने आदि के रूप में अनवरत् रूप से चला आ रहा है। उसकी आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं का भी मुख्यतया यही उद्देश्य रहा है कि मनुष्य जीवन की इन तीनों आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता, सुगमता और विष्वसनीय रूप से हो सके। इन समस्त रचनाओं, संस्थाओं और साधनों की सम्बद्ध और संस्था रूप व्यवस्था का नाम है 'सभ्यता' । मनुष्य के एहिक विकास के साथ– साथ उसकी सभ्यता का भी विकास होता है। खेती–बाड़ी, कला–कौशल, शासन, आन्तरिक शान्ति और बाह्य सुरक्षा के तत्वो ने मानवीय बानक अपनाया है तभी से वह इन तीन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने में संलग्न रहा हैं। सामूहिक जीवन को सुद्दढ़, सबल और सुव्यवस्थित बनाने के साधन–इन सब अंगो में विसतार और विकास होता चला जाता है। मनुष्य जीवन जटिल और विस्तृत होता जाता है। यह सब विकास "सभ्यता" के ही अन्तर्गत है और बहुत मात्रा में उसका विकास समाज विशेष के भौगोलिक वातावरण और एतिहासिक अनुभव पर निर्भर है। ये परिस्थितियॉ सभ्यता विशेष की रूपरेखा और विस्तार का ढांचा तैयार करती हैं । बर्बर जातियों पर तो उनका नियन्त्रण सदैव ही कड़ा रहता है परन्तु विकसित सभ्य समाजों पर भी उनका प्रभाव कम नहीं रहता। उदाहरण के लिये, भारत आज भी एक कृषि–प्रधान देश है और अरब प्रायद्वीप के सामूहिक तथा व्यक्तिगत जीवन में अरब मरूस्थली आज भी एक प्रमुख तत्व है। सभ्य से सभ्य समाज भी, प्रकृति माता के नियन्त्रण से पूर्णतयाः उन्मुक्त नहीं हो सकता। उसका सब किया–कलाप सीमा विशेष के भीतर ही होता है और हो सकता है।

संस्कृति और सभ्यता के मध्य विभाजन करना उचित नहीं है वास्तविकता यह है कि समाज का बाह्य व्यवहार (सभ्यता) तथा आन्तरिक व्यवहार (संस्कृति) एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। ऐसी चीजों, जिन्हें हम सभ्यता की संज्ञा देते है, मैं कुछ अंशो में सांस्कृतिक पहलू भी होता है। यहीं बात संस्कृति के सम्बन्ध में लागू होती है। सांस्कृतिक पदार्थ कही जाने वाली वस्तुओं में उपयोगिता का तत्व निश्चित रूप से सम्मिलित होता है। जब भी कोई वस्तु जिससे आवश्कता पूर्ति की जाती है, खरीदी जाती है तो उसकी उपयोगिता के साथ–साथ सौन्दर्य पर भी विचार किया जाता है इस प्रकार संस्कृति और सभ्यता में अंतः सम्बन्ध है।

सभ्यता का संस्कृति को योगदानः संस्कृति को पीढी दर पीढी हस्तांतरित करने का कार्य सभ्यता करती है– तथा संस्कृति के तत्व सभ्यता के द्वारा प्रसारित होते है, इस तरह सभ्यता में विकास के साथ–साथ संस्कृति को सभ्यता के साथ सामजस्य स्थापित करना पडता है।

संस्कृति का सभ्यता को योगदानः संस्कृति सभ्यता का निर्धारण करती है क्योंकि सभ्यता पर सांस्कृति मूल्यों, प्रथाओं तथा धर्म का प्रभाव पडता है। समाज अपनी शक्तियों, साधनों व आविष्कारो का निर्माण व प्रयोग संस्कृति द्वारा निर्धारित दिशा के अनुसार ही करता है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे की पूरक है व एक दूसरों को प्रभावित करते है।

संस्कृति एवं सभ्यता में अंतर

संस्कृति	सभ्यता
1. संस्कृति आन्तरिक होती है। यह हमारी विचाराधाराओं पर आधारित है।	1. सभ्यता बाह्य होती है। इसमें मूर्त वस्तुऐं आती है।
2. संस्कृति साध्य है।	2. सभ्यता एक साधन मात्र है।
3. संस्कृति का माप कठिन है।	3. सभ्यता को मापा जा सकता है।
4. संस्कृति अपेक्षाकृत स्थिर होती है।	4. सभ्यता निरन्तर आगे बढ़ती रहती है।
5. सांस्कृति तत्वों को अपनाना कठिन है।	5. सभ्यता को सरलता से अपनाया जा सकता है।
6. संस्कृति की प्रसार अपेक्षाकृत कठिन है।	6. सभ्यता बिना किसी प्रयास के एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलती है।
7. संस्कृति का अधिकार क्षेत्र हमारे प्राथमिक हित है।	7. सभ्यता हमारे हितो से सम्बन्धित है।
8. स्वतन्त्रता संस्कृति के विकास की अनिवार्य दशा है।	8. सभ्यता का विकास औपचारिक नियन्त्रण द्वारा भी सम्भव है।
9. संस्कृति किसी विचार को जीवन्त रूप देती है।	9. सभ्यता मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शक्ति की प्राप्ति व संचालन पर केन्द्रित है।
10. संस्कृति नीचे से उपर की ओर विकसित होती है।	10. सभ्यता संस्कृति की वाहक है।

भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ

प्रत्येक संस्कृति जन और भूखण्ड विशेष के पारस्परिक और क्रिया प्रक्रिया का फल होती है अतः संस्कृतियों में ऊँच नीच का प्रश्न करना असंगत प्रतीत होता है परन्तु मानवता के आदर्शो के द्रष्टिकोण से उनका मुल्यांकन तो तर्कसंगत ही दिखाई पड़ता है। भारतीय संस्कृति की निम्न विशेषताएँ प्रतीत होती है,

(1) भारतीय संस्कृति की यह स्थिरता भारतीय जीवन के प्रति उसके अनुकूलता और उपयोगिता स्पष्ट प्रकट करती है। यह सच है कि भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन संस्कृति है। यह सच है कि कालान्तर में उसमें अनेक ऐसी मिलावटें हो गई हैं जो उसकी आधुनिक उपयोगिता को घटा देती है। फिर भी मूल रूप से क्या देशी और क्या विदेशी चिन्तक, भारत के लिए ही नही वरन् संसार के लिए ही नहीं, उसके अंग, मूल्यवान ही नहीं , आवश्यक और माननीय बतलाते हैं।

(2) उसकी दूसरी विशेषता उसकी विविधता और सम्पन्नता है। विदेशियों ने भारत को जातियों, भाषाओं, मतमतान्तरों, और रीति रिवाजों का अजायब घर और संग्रहालय कहकर पुकारा है। ऊपरी दृष्टि से यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक की

यात्रा में आकार, वर्ण, भाषा, व्यवसाय, रीति–रिवाज, रहन–सहन और मतमतान्तर , की ऐसी विभिन्नताएँ मिलती है, कि साधारण तथा उपरोक्त कथन की ही पुष्टि दीख पड़ती है। परन्तु इन विविधताओं के पीछे जो अधार भूत एकता है, वह कुछ अधिक गम्भीर चिन्तन करने पर ही दिखाई पड़ती है। आगे हम इस आधार भूत एकता की व्याख्या करेंगे।

(3) भारतीय संस्कृति की तीसरी विषेशताउसकी संश्लेशाणात्मक प्रतिभा है। ऊपर से देखने में वह संसार की सबसे अधिक निषेधात्मक और पृथकत्व–प्रिय संस्कृति दिखाई पड़ती है। परन्तु यह विचारणीय है कि अनेकानेक प्रजातियॉ प्रलय–समान आक्रमणों को झेलते हुए, यदि यह शक्ति उसमें न होती तो कदाचित् वह बहुत पहले बाबुल, असुर और यवन संस्कृतियों की तरह विलुप्त हो गई होती।

(4) भारतीय संस्कृति आदि काल से ही एक आस्तिक संस्कृति रही है और उसने व्यष्टि और समिष्ट में, सारे चराचर जगत में, एक अन्तरंग एकता की भावना को प्रधान स्थान दिया है। उसने सारे जगत को एक चैतन्य शक्ति– आत्मा अथवा ब्रह्म–से समाहित और उसी की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। इस विश्वास के कारण अहिंसा का सिद्धान्त उसका एक विशिष्ट लक्षण बन गया है।

(5) भारतीय अध्यात्मिक चिन्तन में कर्म का सिद्धान्त प्रधान है। मनुष्य के कर्म ही उसके भविष्य के निर्माता हैं। कोई पीर, पैगम्बर या देवी–देवता उसका अध्यात्मिक

भविष्य नहीं बना सकते। उसके कर्म के बल से भगवान भी भक्त की उपेक्षा नहीं कर सकते। कर्म का सिद्धान्त अभी भारतीय "धर्मों" को एक श्रृंखला में बॉध देता है।

(6) पुन्र्जन्म का सिद्धान्त भी भारतीय अध्यात्म का एक विशिष्ट अंग है जो उसे संसार की दूसरी संस्कृतियों से विशिष्ट स्थान देता है।

(7) भारतीय संस्कृति में अवतार वाद का भी एक विशिष्ट महत्व है। "अवतार" भिन्न प्रकार के होते हैं। जब–तब आवश्यकता होती है, वे प्रकट होते हैं और धर्म एवं सज्जनों की रक्षा और उनका उद्धार करते हैं, "धर्म" का पुनरूत्थान और सुधार करते हैं। समाज की उन्नति के दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त का महत्व यह है कि "धर्म" कोई अपरिवर्तनशील, और चिरकाल के लिए नियत व्याख्या नहीं है। जब–जब आवश्यकता होती है, अधिकारी महापुरूषों के द्वारा उसमें परिवर्तन और संशोधन होता रहता है।

(8) भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख अंग "धर्म" का सिद्धान्त है। इसके प्रति ऊपर भी संकेत किया जा चुका ह। वैदिक युग में यह 'ऋतु' के नाम से इंगित किया जाता था। ऋतु या धर्म सम्पदाय विशेष नहीं है वरन् आचार–व्यवहार का वह व्यापक और सामान्य समूह है जो प्रत्येक श्रेणी के जीव और मनुष्य की निजी उन्नति के अनिवार्य नियम हैं।

(9) ऋग्वेद के समय से ही भारतीय चिन्तक इस सत्य में विश्वास करने लगे थे कि "सत्य एक ही है यद्यपि विप्र या ज्ञानी उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।" उपनिषदों, गीता और सन्तवाणियों में यह बात बार–बार दुहराई गई है। कबीर साहब राम और रहीम की एकता के सर्वप्रथम अन्वेषक नहीं थे। मध्यकालीन साहित्य, कला, और रीति रिवाज इस तथ्य से भरे पड़े हैं।

(10) जगत और जीवन की ऐक्य का उपरोक्त सिद्धान्त ही भारतीय जीवन में 'अहिंसा' निर्वैयता और समस्त चराचर सृष्टि के प्रति दया, करूणा और मैत्री के व्यवहार की मान्यता की पृष्ठ–भूमि है।

(11) 'त्याग' और 'तप' के सिद्धान्त भी सदा से ही भारतीय संस्कृति के विशिष्ट चिन्ह रहें हैं। तप से ही यह सृष्टि पैदा हुई है, तप से ही इसका पोषण हो रहा है। 'तप' के बिना अर्थात् सर्वांगीण संयम के बिना न परमार्थ और न कोई अन्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(12) भारतीय संस्कृति ने समन्वित जीवन पर सदैव ही बल दिया है। अर्थोपार्जन, गृहस्थ जीवन, लौकिक कर्तव्य, इहलौकिक अभ्युदय पर उतना ही बल दिया गया है जितना त्याग और वैराग्य पर। मानव जीवन चार आश्रमों या भागों में विभाजित करके ब्रह्मचर्य अर्थात् विद्योपार्जन और संयम, गृहस्थ जीवन, वानप्रस्थ, और सन्यास, लोक और परलोक के हेतुओं को समान रूप से स्थान दे दिया गया है।

(13) समाज के क्षेत्र में, भारत की संस्कृति की प्रमुख विशेषता उसकी जाति–व्यवस्था है। भारतीय समाज

वर्ण और जातियों में विभाजित है और इनमें से प्रत्येक का अपना "स्वधर्म"—कर्तव्य, व्यवसाय, रीति रिवाज, रहन–सहन का रूप—नियत है। गीता तथा स्मृतियों के अनुसार, मनुष्य को अपना स्वधर्म यत्न–पूर्वक पालन करना चाहिए। उसी में उसका लाभ है। वही उसके लिए मोक्ष का साधन है। आजकल इस व्यवस्था की बहुत आलोचना होती है।

(14)– भारतीय संस्कृति का निजी स्वरूप सदैव से ही ग्राम्य रहा है। आज भी भारत की 80 प्रतिषत जनसंख्या उसके 5 लाख ग्रामों में बसी हुई है। यहाँ बड़े–बड़े नगर बने और बढ़े। पाटिलपुत्र, कन्नौज, दिल्ली, आगरा, उज्जैन, कांची आदि अपने–अपने समय के विशाल, समृद्ध और विश्व विख्यात नगर हुए हैं, परन्तु इन इने–गिने महानगरों ने भारतीय संस्कृति के आधार–भूत ग्राम्य स्वरूप पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाला। हमारे तीज–त्योहार और पर्व, हमारे काव्य की प्राकृतिक पृष्ठभूमि, हमारे सामाजिक चिन्तन और संगठन का सारा ताना–बाना ग्राम्य समुदायों के जीवन से सम्बन्धित है।

(15) भारतीय कला भी संसार की कला से अपने तकनीक साधना और लक्ष्य में पृथ्क है। सौन्दर्य की खोज और उसकी अभिव्यक्ति का प्रयास सुसंस्कृत मानव ने हर काल और हर देश में किया है। भारतीय कलाकार सौन्दर्य के आधार–विशेष की बाहरी और ऊपरी वास्तविकता को द्रष्टि–बहिर करके, उसके अन्तरम् रूप के निरूपण, उसकी उपाधि–रहित रूपरेखा के चित्रण में संलग्न रहा है।

(16) भारत में दर्शन और दार्शनिक खोज एक बौद्धिक प्रक्रिया ही नहीं समझी गई। दर्शन ही धर्म है और धर्म दर्शन है। जिन सत्यों को दर्शन सिद्ध करता है वे दार्शनिक, उसके शिष्य–समुदाय और उसके अनुयायियों के लिए जीवन पथ प्रदर्षित करते हैं।

उपर्युक्त विशेषताएँ मुख्यतः भारतीय संस्कृति के गुणों की सूचक हैं। आवश्यक है कि हम उसकी कतिपय दूषणों की ओर भी कुछ ध्यान दें। करूणा, मैत्री, दया और परोपकार के उदात्त आदर्श भारतीय संस्कृति में भरे पड़े हैं, परन्तु संगठित रूप से दरिद्रता–निवारण, अस्प्रश्यता के दुखद परिणामों में अस्पृश्यजनों की सदैव बढ़ती हुई संख्या को विमुक्ति दिलाना; किसान मजदूर और श्रमकों के हितों का संरक्षण—ऐसे ध्येयों की ओर से हमारा प्राचीन और मध्य–युगीन समाज, सदा उदासीन रहा। दान, दया, अश्रयदान व्यक्तिगत कार्य थे। समाज के समुदायिक आदर्शो में उन्हें कभी समुचित स्थान नहीं मिला। यह विकास आधुनिक काल, विशेषतः गॉधी–युग, की देन है। द्वितीय, भारत की आर्थिक व्यवस्था के ग्रामीण रूप ने सदैव देश की आर्थिक दशा को विकेन्द्रित, अर्ध–विकसित और अप्रगतिशील बनाए रखा। किसान की दशा शायद कभी भी अच्छी नहीं रही। ग्रामीणजनों के रहन–सहन, खान–पान धनार्जन तथा अर्थ संचय का स्तर सदा ही नीचा रहा। व्यपारी वर्ग में बड़े–बड़े धनाड्य सेठ साहूकार हुए परन्तु योरोपीय देशो के विपरीत, वे कभी अपनी सामुदायिक शक्ति का विकास नहीं कर पाये जिसके कारण समाज

और शासन में लौकिक और आर्थिक व्यवस्था की वह उन्नति और राज्यशासन में इस वर्ग के स्थान में वह वृद्धि न हो सकी जो 15 और 16 वीं शताब्दियों में योरोप के दशो में हुई और जिसके फलस्वरूप वहॉ का शासन उदार, प्रजातन्त्रात्मक और विकासशील बन गया।

(17) संस्कृति की प्रकृति चाहे भौतिक हो या अभौतिक, दोनो ही प्रकार की संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।

(18) संस्कृति की अवधारणा सामूहिक अवधारणा है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक सीखता रहता है। इस सामाजीकरण की प्रक्रिया के मध्य व्यक्ति समाज के धर्म, आचार्य, कला, परम्पराओं आदि को सीखता है। इसलिये समाजशास्त्रियों ने संस्कृति को सीखा हुआ गुण, व्यवहार या सामाजिक विरासत माना है।

(19) संस्कृति का निर्माण सामूहिक आदतों एवं व्यवहार करने के तरीकों से होता है इसमें समूह के आदर्श – नियम मिश्रित रहते है। इसी कारण संस्कृति की प्रकृति आर्दशत्मक हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति के अनुसार व्यवहार करता है।

(20) संस्कृति सामाजिक गुणों का ही नाम है। संस्कृति में धर्म, प्रथा, कला व साहित्य आदि सामाजिक गुणों का समावेश होता है। अतः संस्कृति को एक सामाजिक घटना कहा जा सकता है। संस्कृति अपने समाज के सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित करती है। तथा उसमें एकरूपता लाती है।

(21) मानव की अनेक आवश्यकताऐं ऐसी होती है। जिनकी पूर्ति संस्कृति के माध्यम से होती है। जबकि कोई संस्कृति आवष्यकता पूरी करने में असमर्थ हो जाती है। तो वह नष्ट हो जाती है।

(22) प्रत्येक संस्कृति समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। यह पर्यावरण के साथ अनुकूलन करती है, चाहे पर्यावरण भौगोलिक हो या सामाजिक–सांस्कृति। अन्य शब्दों में, समय के साथ–साथ भौतिक संस्कृतियों में परिवर्तन होता है। और उसके साथ व्यक्ति अनुकूलन कर लेते है।

(23) प्रत्येक समाज की अपनी प्रथाएँ, परम्पराऐं, धर्म, विश्वास, कला व ज्ञान आदि होते है चूंकि प्रत्येक समाज की आवष्यताऐं अलग–अलग होती है और इन आवश्यताओं को पूरा करने के ढंग भी अलग–अलग होते है, अतः संस्कृतियों में भिन्नता पाई जाती है।

(24) संस्कृति एक मनोवैज्ञानिक तथा प्रतीकात्मक वास्तविकता है। यह केवल अवधारणा मात्र नहीं है। संस्कृति मानव की सामज की उपज है और समाज एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। इसके अतिरिक्त मनुष्य प्रतीकात्मक प्राणी है। उसने विचारों के आदान प्रदान हेतु विभिन्न तरीकों को विकसित किया है।

(25) संस्कृति एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है संस्कृति का आधार अविष्कार एवं मानव–सीख है। मनुष्य जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। और कोई न कोई नया अविष्कार करता रहता है। अतः संस्कृति

वृद्धि निरन्तर होती रहती है। इस प्रकार संस्कृति इतिहास की वस्तु बन जाती है।

श्रमणा में सामाजिक जीवन की झाँकी

श्रमणा महाकाव्य में सामाजिक जीवन सर्वज्ञ प्रतीत होता है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य बिना समाज के नहीं रह सकता। समाज के दो रूप होते है मूर्त, अर्मूत, किन्तु मात्र मानव के समूह को ही समाज नहीं कहा जा सकता वरन समाज का वास्तविक अर्थ है समूह में रहने वाले व्यक्ति के आपस में सम्बन्धों की क्या व्यवस्था है उसके उचित अनुचित के विचार विनिमय ही समाज शब्द की उचित परिभाषा है। श्रमणा महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में निम्न पंक्तियों के माध्यम से समाज की स्थिति स्पष्ट की गई है :–

जिस समाज के संचालन को राज्य विधान बनाता,
उस समाज की मनोवृत्ति का कवि होता निर्माता।
देशकाल स्थिति पर कवि तूलिका चला करती है,
देशकाल स्थिति पर शासन विद्या पला करती है।
कवि स्वच्छंद सदा होता है करता नहीं समर्पण,
इसलिये साहित्य कहा जाता है समाज का दर्पण।
राजनीति के लिये सत्य साहित्य सदा सम्बल है,
नृप स्थिति के परिचय का यह साधन बहुत सरल है।

यदि किसी काल के समाज की स्थिति देखना हो तो उस काल के साहित्य का अध्ययन किया जायेतो समाज का पूरा विवरण उसमें मिल जाता है। इसलिये साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध है। कवि समाज में

रहता है इसलिये वह समाज से प्रभावित रहता है वह भूत और वर्तमान का दृष्टा लेकर भविष्य का सृष्टा होता है।

महाकवि अवधेश ने कहा महाकाव्य मानव का समग्र जीवन दर्शन है इस सूत्र को श्रमणा महाकाव्य में पूर्ण रूप से परिलक्षित किया है। आज का मनुष्य रोटी, कपडा, मकान के लिये उचित अनुचित का विचार त्याग कर किसी भी रास्ते से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है दूसरों से ईर्ष्या करना मनुष्य का स्वाभाव बन गया है। मानव में प्रकृति ने कोई भेद नहीं किया फिर मनुष्य स्वयं क्यों भेद उत्पन्न कर रहा है वेद पुराण की मान्यता है कि परमात्मा के मुख से ब्रह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और चरणों से सूद्रों की उत्पत्ति हुई है।

सम्पूर्ण संसार उस परमात्मा का स्वरूप है। वैदिक मान्यता के अनुसार जन्म से ही नहीं कर्म से ही वर्ण व्यवस्था को माना है गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण में परिवर्तन किया जाता है यही बात मनुस्मृति में कही गई है कवि की सोच है कि हरि चरण से निसृता जब हरि–प्रिया पयपूत भगवान के चरणों से निकली हुई गंगा यदि महान पवित्र मानी जाती है तो भगवान के चरणों से निकले हुये सूद्र अछूत कैसे हो सकते है? यह कवि की अपनी सोच है।

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई मानी जाती है। परिवार से कुटुम्ब, कुटुम्ब से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से संसार का अस्तित्व कायम है सम्पूर्ण संसार का निर्माता एक ही परमपिता परमात्मा है और मानव उसकी संतान है इसलिये सम्पूर्ण मानव जाति एक ही परिवार अथवा कुटुम्ब कहा जाता है इन्हीं विचारो को ध्यान में रखते हुये हमारे ऋषियों ने वसुधैव कुटुम्बकम की भावना स्थापित की है। इस तथ्य को श्रमणा महाकाव्य के तृतीय सर्ग में निरूपित किया गया है :–

शिव स्वरूप अति दिव्य भावना सृष्टि रूप की महिमा,
थी वसुधैव कुटुम्ब विरोधाभास समन्वित गरिमा।
गौरी वाम गंग दायें कर सिर से उतर रहीं थी,
सन्मुख थी योगिनी जया, नैत्रों में वह रही थी।

वर्तमान में वर्ण संघर्ष का बोलबाला है। जातिवाद अपनी जड़े जमा रहा है। जिससे समाज ही नहीं राष्ट्र की स्थिति विकृत होती जा रही है वर्ण संघर्ष का महषासुर, जातिवाद का रक्त बीज दोनो ने मिलकर वर्तमान जन जीवन का त्रस्त कर दिया है। वर्तमान में समाज में मनुष्य–मनुष्य एक दूसरे से ईर्ष्या द्वेष कर रहे है। बैर विरोध, लड़ाई झगडों का समाज में बाहुल्य है। इसी व्यंग्य को करते हुये श्रमणा कहती है गज और सिंह का बच्चा दोनों लड़ रहे थे श्रमणा ने इनका निवारण कर दिया तो शुक ने इसकी प्रसंशा की। उसके उत्तर में श्रमणा हाथी के माध्यम से मानवों की संगति का प्रभाव हाथी में आ जाने से वह लड़ाकू हो गया क्योंकि पंचवटी में तो सब निर्वेर विचरण करते है :–

पंचवटी के इस प्रक्षेत्र में सब निर्वेर विचरते,
जीव जन्तु पशु पक्षी मानव सब हिल–मिल कर रहते।

दशवें सर्ग में श्रमणा विश्वामित्र से पूँछती है कृपया वर्णों के कर्तव्यों के बारे में बतायें। मानव जीवन सफल बनाने के लिये मानव का कर्तव्य क्या है? जिससें वे अच्छी संगति प्राप्त कर सके। इस पर विश्वामित्र ने समाजवाद की विषद् विवेचना की है। जाति का जन्म से सम्बन्ध नहीं है बल्कि कर्म से है, ब्राह्मण में यदि शूद्र के आचरण है तो वह शूद्र ही रहेगा यदि शूद्र में ब्राह्मण के आचरण है तो वह ब्राह्मण रहेगा। परिवार का उदाहरण देते हुये चारो वर्णों को विश्वामित्र ने इस प्रकार मान्यता दी है :–

सूद्र शब्द है हेय रूढ़ि से, किन्तु महा पावन है,

अपनी शिशु के हित माता में सभी सूद्र लक्षण है।
इस समाज शिशु की समझों की सूद्र माता है,
ब्राह्मण गुरू है, वैश्य पिता है, क्षत्रिय ही भ्राता है।

इस प्रकार समाज को दिशा निर्देशन ज्ञान के द्वारा ही दिया जा सकता है। ब्राह्मण को ज्ञान का प्रतीक माना है। देह में मात्र मस्तिष्क के विकृत होने से ही सारा शरीर असंतुलित हो जाता है, इसी प्रकार सारा श्रेय ब्राह्मण अर्थात ज्ञानी वर्ग को दिया है और कर्मवाद से ही समाज की व्यवस्था रचनाकार ने दी है। श्रमणा महाकाव्य में सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू का दृश्य दिखाई देता है जो समाज के लिये उचित अनुचित का निर्णय देता है।

श्रमणा महाकाव्य में राजनीतिक जीवन की झाँकी

महाकाव्य मानव के समग्र जीवन का एक वृत्त चित्र होता है। कवि समाज में रहता है अतः वह तत्कालीन समाज के देशकाल और परिस्थिति से अछूता नहीं रह सकता। यहां श्रमणा महाकाव्य में राजनैतिक विचारों पर दृष्टि डालना है। महाकाव्य के रचियेता कविवर अवधेश जी ने ब्रिटिश शासन की परतंत्रता और स्वतंत्रता दोनों का वातावरण देखा और अनुभव किया है। लगभग 18 वर्ष विद्यालय में व्यतीत किये है और उसके बाद नौकरी में आ गये। सरकारी नौकरी में ब्रिटिश शासन में लगभग 6–7 माह ही रहे और उसके बाद स्वतंत्रता में ही नौकरी करते रहे और उनकी प्रतिभा का विकास जो कि परतंत्रता में भी विकास की ओर अग्रसर था जो स्वतंत्र होने के बाद पूर्ण रूप से परिपक्व हो गया और उसके बाद श्रमणा महाकाव्य की रचना की जिसमें राजनीति से जुड़े प्रत्येक पहलू का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है।

श्रमणा महाकाव्य के तृतीय सर्ग में प्रथम बार शबर राज के बारे में परिचय मिलता है उनकी राज्य व्यवस्था कार्य कलाप का विवरण निम्न

प्रकार किया गया राज्य में अनेक चिकित्सालय खोली गई थी, जिनमें मनुष्य और पशु पक्षी भी शरण पाते थे आहत और रोग से पीड़ित जीवों का समुचित उपचार किया जाता था–

शबर राज द्वारा निर्मित थी वर आतुर शालायें,
मानव से पशु–पक्षी तक जिनमें शुभ आश्रय पायें।
आहत तथा रोग से पीड़ित, जीव यहां आते थे,
यथा योग्य उपचार सभी के वहां किये जाते थे।

राजनीति का यह भी सिद्धान्त है कि युद्धकाल में अथवा प्रथम परिचय में गोपनीयता आवश्यक है यही कारण है कि इन्द्र को कैकेयी का परिचय दशरथ ने स्पष्ट नहीं दिया पुरूष वेषी कैकयी का परिचय सखा और सेनापति के रूप में कराया देवासुर संग्राम में दशरथ की विजय हो चुकी थी, इसका श्रेय दशरथ कैकेयी को ही देते है क्योंकि रथ की धुरी की कील टूट जाने पर कैकयी ने ही अपने हाथ से पहिये को रोककर दशरथ के प्राणों की रक्षा की थी यहां दशरथ ने एक बड़ी ही सुन्दर पंक्ति कैकेयी की प्रशंसा में कहीं है जो राजनीतिज्ञों के लिये उत्तम संदेश है :–

तन बल जन अस्त्र शस्त्र बल माध्यम कहलाता है,
केवल बल से नहीं बुद्धि से युध्य लड़ा जाता है।

युद्ध में बुद्धि की सजगता आवश्यक है यदि बुद्धि और विवेक का उचित समय पर प्रयोग नहीं किया जाये तो सैन्य बल, अस्त्र–शस्त्र बल व्यर्थ चला जाता है। वर्तमान राजनीतिज्ञ, राजनीति को धर्म से पृथक करने की बात कहते है। श्रमणाकार ने छंद संख्या आठ में धर्म को राज्य का अनिवार्य अंग माना है और इसके समर्थन में इसी सर्ग के पृष्ठ 59 पर राजा दशरथ को एक शंका उत्पन्न होती है और वे चिन्तित हो जाते है:–

किन्तु नृपति के मन में नूतन चिन्ता एक लगी थी,

अवध आगमन पर ही मन में शंका एक जगी थी।
बिना प्रजा की सम्मति मैने रण अभियान किया था,
सन्धि और विग्रह का सारा, भंग विधान किया था।
महापाप हो गया कि इसका प्रायश्चित हो कैसे,
गुरू ही बता सकेगें इसका समाधान हो जैसे।

गुरू वशिष्ट के आने पर राजा दशरथ अपना अपराध स्वीकार करते हुये कहते है–

हाथ जोड़कर बोले नृप वर गुरूवर क्षमा करेगें,
अन्जाने अपराध हो गया उसका भार हरेगें।

गुरू वशिष्ट दशरथ को अपराधी मानते हुये उनका दोष बतलाते है। राजा स्वतंत्र नहीं है वह प्रजा की धरोहर है आपने महा अपराध किया है। गुरू वशिष्ट का कथन राजनीति के लिये आदर्श है। राजा, मंशा, वाचा, कर्मणा से प्रजा की सेवा करता है। उसे प्रजा के सम्मति के बिना कुछ भी करने का अधिकार नहीं है क्योंकि राजा के किसी भी अच्छे बुरे कार्य का परिणाम राजा को भोगना पड़ता है इसलिये प्रजा को राजा की गतिविधि पर सदैव दृष्टि रखना चाहिये। गुरू वशिष्ट यह भी संकेत करते है कि मैं आपके उस प्रायश्चित काल में मौन रहूँगा भले ही इसे सारा विश्व अनुचित कहेगा :–

हुआ महा पातक नृप वर प्रायश्चित करना होगा,
अमिट हुआ करता है, करनी का फल भरना होगा।
वृद्धावस्था में कोई प्रिय वस्तु त्यागनी होगी,
बिना पूछ कर किये गये कार्य पर क्षमा मांगनी होगी।
होगा मुझे धर्म संकट में कुछ भी कह न सकूँगा,
सारा विश्व कहेगा अनुचित पर मैं मौन रहूँगा।

इस प्रकार संक्षिप्त रूप में कुछ स्थलों के राजनीति विचारों और आख्यानों पर प्रकाश डाला है। ग्यारवें सर्ग में बालि के आभाव में सुग्रीव को राजा बनाने की कथा में भी राजनीति विचार प्रस्तुत हुये है। बारहवें सर्ग में लंका की राजनीति पर श्रमणा सूपनखा से प्रश्न करती है तो राजनीति के सूत्रों का विवरण मिलता है। कहना होगा कि श्रमणा महाकाव्य में राजनीति के सभी अंगो पर प्रसंगानुसार विचार विमर्श किया गया है।

श्रमणा में धार्मिक जीवन की झाँकी

धर्म का अर्थ

धर्म मनुष्य के जीवन का अनिवार्य तत्व है। धर्म की विशेषताओं, उसके आदर्शो और जीवन को संगठित करने से सम्बन्धित उसके कार्यो के देखते हुये यह स्वीकार करना पडता है कि धर्म एक ऐसा अर्मूत तत्व है जो मनुष्य की मूल आवश्यकताओं से भी बढ़कर महत्वपूर्ण है। मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिक, स्थाई एवं व्यापक है कि धर्म को स्पष्ट रूप से समझे बिना हम समाज को नहीं समझ सकते। धर्म केवल सभ्य समाज के साथ ही जुड़ा है, ऐसा कहना उचित नहीं है। धर्म जन जातियों में भी किसी न किसी रूप में पाया जाता है। वास्तविकता यह है कि सभ्य समाज के धर्म की पृष्ठभूमि जन जातिये समाज से ही निर्मित हुयी है और सभ्य जीवन का धर्म जनजातीय धर्म का ही संशोधित एवं परिवर्तित रूप है। धर्म की वास्तविकता के संदर्भ में उसकी सत्यता या असत्यता का अध्ययन नहीं किया जाता है बल्कि सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है।

धर्म अलौकिक शक्तियों में विश्वास एवं इनकी उपासना पर आधारित है। धर्म का सम्बन्ध हमारी मानसिक प्रवृत्ति से होता है। जिसका प्रार्दुभाव हमारे विचारों और संस्कारों द्वारा होता है। प्रत्येक प्रमुख धर्म का सम्बन्ध

उस जनता की नैतिकता से होता है जो उस धर्म का पालन करती है। नैतिकता शब्द कर्तव्य की आंतरिक भावना पर बल देता है। अन्य शब्दों में इसका सम्बन्ध अच्छे और बुरे की भावना से है। धर्म नैतिकता को शक्ति प्रदान करता है। तथा उसका सम्बन्ध इन्द्रियों से परे रहने वाले विश्व से है।

धर्म की विशेषताऐं

1. धर्म के दो पक्ष है आंतरिक तथा बाह्य पक्ष, आंतरिक पक्ष में विचारों का समूह, संवेग व भावनाऐं, धार्मिक प्रथाऐं तथा मानव के ईश्वर से सम्बन्धित कार्यो के सम्बन्ध में विश्वास आदि आते है। जबकि बाह्य पक्ष में प्रार्थना की प्रथा, धार्मिक उत्सव, स्मृतियाँ आदि आते है इनके माध्यम से धार्मिक विश्वास की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी में धार्मिक संस्थाऐं जैसे चर्च, मन्दिर, मस्जिद आदि भी आते है।

2. मानवोपरि शक्ति में विश्वास करना धर्म की प्रमुख विशेषता है। वह शक्ति मानव शक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। इस शक्ति में विश्वास न करने वाला व्यक्ति नास्तिक, अधार्मिक या धर्म विरोधी कहलाता है। धर्म को बाह्य आचरणों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है केवल विश्वास ही पर्याप्त नहीं होता है यह स्पष्ट करने का माध्यम भी अत्यंत आवश्यक है कि किसी व्यक्ति में मानवोपरि शक्ति मे विश्वास पाया जाता है इस विश्वास का प्रदर्शन अनेक बाह्य क्रियाओं जैसे तीज–त्यौहार, धार्मिक उत्सव, धार्मिक मेले आदि से होता है।

3. धर्म हमारे व्यक्तिगत अनुभवों से सम्बन्धित होने के साथ–साथ सामाजिक अनुभवों से सम्बन्धित है इसे इस प्रकार भी कहा जा

सकता है कि धर्म एक सामाजिक वस्तु होते हुऐ भी व्यक्तिगत है। व्यक्ति की अनुभूति द्वारा उचित समझा जाने वाला विश्वास ही उसका धर्म है। यदि व्यक्ति यह विश्वास करें कि उसके अपने धर्म के स्थान पर किसी अन्य धर्म में अधिक श्रेष्ठता है तब वह उस धर्म को भी अपना सकता है तथापि धर्म एक सामाजिक वस्तु है।

4. धर्म के साथ–साथ पवित्रता की अवधारणा भी सम्बद्ध होती है। धार्मिक विश्वासों, व स्थानो में पवित्रता का भाव निहित रहता है।

5. धर्म में पवित्रता व आदर के साथ–साथ भय की भावना भी निहित रहती है। इसी भय की धारणा के कारण ही मनुष्य अनैतिक कार्य करने से डरता है। इस प्रकार धर्म सामाजिक नियन्त्रण की भूमिका निभाता है।

6. धर्म मानव समाज का सर्वश्रेष्ठ मूल्य है। पवित्रता, आदर, भय की अवधारणा, विश्वासों की अनुभूति के कारण धर्म मानव समाज का सर्वश्रेष्ठ मूल्य बन गया है।

7. धर्म एक सार्वभौमिक संस्था है। आदिम मनुष्य से सभ्य मनुष्य तक धार्मिक विचार किसी न किसी रूप में अवश्य पाये जाते रहे है। आदिमतम जनजातियों में भी ' आत्मा ' 'माना', ' भूत–प्रेत ' इत्यादि अनेक प्रकार की शक्तियों में विश्वास पाया जाता है। जो कि इनमें धर्म की भावना की विद्यमानता की पुष्टि करता है।

8. यह शक्ति प्राकृतिक व मानवीय जीवन को निर्देशित व नियन्त्रित करती है। इस शक्ति को मानवोपरि माने जाने के कारण इससे डरा भी जाता है। यह शक्ति एक सामाजिक शक्ति है।

9. धर्म की चीजे पवित्र मानी जाती है। मन्दिर, मस्जिद, मठ, शिववालय आदि पूजा स्थल तथा गिरजाघर, रामायण, गीता, वेद, बाइबिल, कुरान आदि पुस्तके भी पवित्र मानी जाती है।

10. धर्म सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और समाज में अनेक नियमों का संचालन करता है। तथा वह संस्कारों समारोह, प्रार्थना, पुजारियों की सत्ता, धार्मिक पुस्तकों तथा अन्य विशेष प्रतीको द्वारा संस्थागत नियंत्रण रखता है।

श्रमणा महाकाव्य में धार्मिक जीवन की झाँकी

धर्म एक ऐसा विषय है जिस पर कितना भी प्रकाश डाला जाये वह कम ही रहेगा वर्तमान में धर्म पृथ्वी पर अनेकों स्वरूप में स्थित है। अपने देश में ही इतने धर्म प्रचलित है जिनकी संख्या करना संभव नहीं है तो कठिन अवश्य है। जैसे हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, सिख धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, शाक्त धर्म आदि। श्रमणा में धर्म का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह कुछ विशेष प्रकार का है वास्तविकता यह है कि यह उपरोक्त को धर्म नहीं कहा जाना चाहिए। यह मात्र सम्प्रदाय है। भारतीय मनीषियों ने धर्म की जो परिभाषा दी है वह एक देशीय नहीं है। सार्वभौमिक है। भारतीय मनीषियों ने जो दस लक्षण बताये है वे सारे विश्व में किसी न किसी प्रकार मान्य है। – धैर्य, क्षमा, घृति, शौच, धी, इन्द्रिय, निग्रह, सत्य है अस्ते, अक्रोध दस विधा धर्म कृत्य। यह दस धर्म के लक्षण संसार का कोई भी मानव अथवा देश अमान्य नहीं कर सकता। श्रमणा महाकाव्य में इन्हीं दस धर्मो की जगह–जगह पर विवेचना की गई है श्रमणा महाकाव्य के तृतीय सर्ग में शबर राज ने शंकर जी से प्रश्न किया – देव ईश का परिचय देकर कृपया हमें बताये,

धर्म कर्म की ज्ञान भक्ति की क्या परिभाषाऐं।

शिवजी उत्तर में कहते है–

इसी ज्ञान की प्राप्ति हेतु जो कर्म किया जाता है,
वही कर्म है यही जीव का धर्म कहा जाता है।
अपने संग व्यवहार दूसरों से जैसा तुम चाहो,
वैसा ही व्यवहार दूसरें के संग स्वंय निभाओं।
इससे सरल धर्म की कुछ भी हो न सकी परिभाषा,
इसी धर्म से हो सकती है सहज मुक्त की आशा।

श्रमणा महाकाव्य के दशवें सर्ग में वर्णो का धर्म बताते हुये महाकवि अवधेश जी कहते है कि कर्म से ही वर्ण और वर्णों के कर्म को ही धर्म कहते है। यही स्मृद्धि का सूत्र है। वर्णों के आचरण में कर्म रूप ही धर्म बन जाता है और कर्म के आधार पर ही वर्ण निर्धारित किये जाते है–

इसलिये निज धर्म, कर्म छोड़ना महा पातक है,
स्वयं तथा मानव समाज के लिये घोर घातक है।
सौंपा गया कर्म जो जिसका वही धर्म है उसका,
वर्ण व्यवस्था का, समाज का यही धर्म है इसका।

वर्णाश्रम को धर्म का आधार श्रमणा महाकाव्य में माना गया है। गृहस्थ धर्म ही धर्म का सबसे बड़ा आधार है। धर्म के द्वारा ही अर्थ की साधना का प्राविधान किया गया है कामनाओं की पूर्ति के लिये अर्थ की आवश्यकता होती है। और जब धर्म के द्वारा अर्थ का प्राविधान किया जाता है तो वही सतकर्मो में परिणत हो जाता है और वही मोक्ष का प्रदाता बन जाता है। राजा और प्रजा का धर्म श्रमणा महाकाव्य में इस प्रकार परिभाषित किया गया है –

राजा प्रजा स्वयं इस क्रम से चलकर सुख पाते है,
ऐसे मानव का नर क्या सुर यशो गान गाते है।
धर्म प्रजा का है राजाज्ञा सादर शीष धरें वह राजा का है,

धर्म लोक का अहित करें वह क्षमा नहीं पाता है।
जन से बड़ी समाज लोक भी है समाज से बढ़कर,
लोक शत्रु का दमन कार्य है महा पुण्य श्रेयष्कर।

इस प्रकार में श्रमणा महाकाव्य में विभिन्न स्थानो पर धर्म की अनेक व्याख्या की गई उन सबमें उपरोक्त धर्म के दस लक्षणों की व्याख्या विस्तार से प्रतिपादित की गई है। श्रमणा महाकाव्य का धर्म वास्तव में मानव धर्म की ही व्याख्या है जो मानव के लिये लोक और परलोक के लिये हितकारी है।

नैतिकता का अर्थ

नैतिकता के अंतर्गत व्यवहार के वे नियम आते है जिनका अनुमोदन किसी बाहरी अलौकिक शक्ति के द्वारा नहीं होता है। नैतिकता के पीछे एक ही शक्ति कार्य करती है जो समान रूप से बुरे कार्यो के दुष्परिणामों से अवगत कराती है। यह शक्ति समाज का दवाब है। नैतिक मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होते है जिन्हें सामाजीकरण द्वारा व्यक्ति को सिखाया जाता है इनका पालन प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य समझा जाता है। धर्म और नैतिकता सामाजिक नियन्त्रण के ही महत्वपूर्ण स्थान नहीं है बल्कि ये दोनो शक्तियाँ मानव का उसके सामाजिक जीवन में मार्ग दर्शन भी करती है। नैतिकता के आधार पर कुछ विचार जैसे ईमानदारी, न्याय, स्वतन्त्रता, औचित्य, दया, पुण्य, आदि प्रत्येक समुदाय में विकसित हो जाते है। यह विचार मानव के जीवन का मार्ग दर्शन करते है।

नैतिकता के अंतर्गत व्यवहार के वे नियम आते है जिनका अनुमोदन किसी बाहरी अलौकिक शक्ति द्वारा नहीं होता है। नैतिकता के पीछे एक ही शक्ति कार्य करती है जो समान रूप से बुरे कार्यो के दुष्परिणामो से अवगत कराती है। यह शक्ति समाज का दबाव है नैतिक मूल्य समाज द्वारा मान्यता

प्राप्त होते है जिन्हें समाजीकरण द्वारा व्यक्ति को सिखाया जाता है। इनका पालन प्रत्येक व्यक्ति का समझा जाता है।

नैतिकता की विशेषताएँ

1. *नैतिकता की स्वीकृति व्यक्तिगत और सामुदायिक* दोनो स्तरो पर होती है। एक ओर व्यक्ति की आत्मा नैतिक नियमो को उचित मानती है तो दूसरी ओर समुदाय या समाज भी इन्हें आदर्श व्यवहार के नियम मानता है।
2. नैतिक नियम अधिकांशतः तार्किक होते है।
3. नैतिकता का सम्बन्ध समाज एवं सामाजिक परिस्थितियों व मूल्यो से है।
4. नैतिक नियमो में अपेक्षाकृत कम रूढ़िवादिता पाई जाती है। वे समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते है।
5. व्यक्ति नैतिक नियमो का पालन स्वेच्छा से करता है, किसी के डर से नही।
6. नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्ति के चारित्रिक मूल्यो से है।
7. नैतिकता अच्छाई तथा बुराई से सम्बन्धित होती है।
8. नैतिकता प्रगतिशील तथा परिवर्तनशील होती है।

नैतिकता में कर्तव्य की आंतरिक भावना सन्निहित होती है। इसमें उचित और अनुचित पर बल दिया जाता है। जो लोग नियमों का उल्लघंन करते है।

श्रमणा महाकाव्य में नैतिक व मानव मूल्य का स्वरूप

नैतिक शब्द नीति से बना है मानवता का मूल आधार नैतिकता ही है। जिस समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो जाता है वह समाज दिशाहीन होकर विनष्ट हो जाता है। श्रृद्धा, विश्वास, नैतिकता के मूल स्तंभ है मानव

को कभी भी अपने को दीन नहीं समझना चाहिये। श्रमणा महाकाव्य के दशवें सर्ग में कहा गया है–

यही एक संदेश विश्व को देने को मैं आया,
वेश उदासी राम भद्र ने भी इस हेतु बनाया।
मानव सभी समान न कोई छोटा और बडा है,
इसी भावना पर समाज का शाश्वत भवन खड़ा है।
हीन समझ लेना अपने को नहीं बुद्धिमानी है,
उँचे श्रृंग छोड़ देता है छोटे श्रोत का पानी है।

नैतिक का दूसरा स्वरूप ही मर्यादा है और नैतिकता और मर्यादा मिलकर ही मानव मूल्यों का मानदण्ड निर्धारित करती है। आज का मनुष्य रोटी, कपड़ा और मकान के लिये उचित अनुचित का विचार त्याग कर किसी भी रास्ते से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। दूसरों से ईर्ष्या करना मनुष्य का स्वभाव बन गया है। मानव में प्रकृति ने कोई भेद नहीं किया गया है फिर मनुष्य स्वयं क्यों भेद उत्पन्न कर रहा है। वेद पुराणों की मान्यता है कि परमात्मा के मुख से ब्रह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुयी है।

हैं अहिंसा और हिंसा का न कोई प्रश्न,
असम बसन उपासना का प्रश्न ही यह कृत्सन।
दूसरों पर तो सभी करते विलोम विमर्श,
पर न अपना सोच पायें आज तक उत्कर्ष।
क्यों मनुज के हृदय में होती स्वयं ही ग्लानि,
क्यों इतर उत्कर्ष उर अनमान होती म्लानी।
पंच तत्वों में प्रकृति का है समान विधान,
फिर भला क्यों हो गया है नृकृति का आसमान।

एक होने पर भला क्यों है विभेद अनेक,
वर्ण और अवर्ण मिलकर जब बना वपु एक।

सम्पूर्ण संसार उस परमात्मा का ही स्वरूप है तुलसी के अनुसार – " सिय राम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी। तो फिर मानवों, मानवों में भेद कैसा? आगे कवि ने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जो निरून्तरीय है। जन्म के पहले और मृत्यु के पश्चात तो सभी शूद्र होते है–

जन्म जायते शूद्रः
संस्कारों द्विजों भवेत्।

तो फिर संस्कार के द्वारा जाति का निर्माण होना सिद्ध होता है, तो संस्कार के द्वारा शूद्र उच्च वर्ण का क्यों नहीं हो सकता। प्रथम सर्ग में कवि मानव मूल्यों के प्रति सर्तक है ऊँच–नीच, जाति–पाति, छुआ–छूत आदि के कारण किसी मनुष्य को छोटा–बड़ा मानना मानव मूल्यों के विपरीत है। मानव–मानव एक समान है। इसके लिये कवि ने जो तर्क प्रस्तुत किये है वो निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है –

हरि चरण से निसृता जब हरि–प्रिया पयपूत,
हरि चरण से निसृत है क्यों फिर अछूत–अछूत।
जन्म से पहिले सभी औ मृत्यु के पश्चात,
शूद्र ही सब जन्म से होते यहाँ उत्पन्न,
संस्कृत होकर सभी बनते यहाँ पर भिन्न।
संस्कारों का सभी को फिर न क्यों अधिकार,
क्या न हो सकता मनुज के कृत्य का प्रतिकार।
क्या अधम करते नहीं है श्रेष्ठता का यत्न,
क्या अंधेरी खान से प्रकटे नहीं है रत्न।

यहाँ वैदिक मान्यता के अनुसार जन्म से नहीं कर्म से ही वर्ण व्यवस्था को माना है गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण में परिवर्तन किया जा सकता है। यही बात मनुस्मृति में कहीं गयी है। 1. समाज के क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र चार अवयव है उसी प्रकार जिस प्रकार शरीर के बाहु, मुख, उदर और चरण हैं जैसे इन चारों अंगों पर सारे शरीर का अस्तित्व है उसी प्रकार प्राचीन काल से इन्हीं चार वर्णो पर समाज का अस्तित्व टिका है। कवि की युक्ति है हरि चरण से निसृता जब हरि–प्रिया पयपूत भगवान के चरणों से निकली हुयी गंगा यदि महान पवित्र मानी जाती है तो भगवान के चरणों से निकलें हुये शूद्र अछूत कैसे हो सकते हैं? संस्कार वश तो सभी उच्चता प्राप्त कर सकते है। आगे मानव मूल्यों के लिये परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है परिवार से ही समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। मानव मूल्य और नैतिकता दोनो के मानदण्ड परिवार ही प्रस्थापित करते है इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में यत्र–तत्र सभी जगह नैतिक और मानव मूल्यों का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। सच तो यह है कि श्रमणा महाकाव्य के प्रत्येक पात्र के चरित्र में मानव मूल्यों और नैतिकता के दर्शन होते है। इस महाकाव्य में कुछ ऐसे ही पात्र है जिन्होंने नैतिकता और मानव मूल्यों का अवमूल्यन किया है। इस प्रकार पर्याप्त रूप से श्रमणा महाकाव्य में मानव मूल्यों की विस्तृप्त व्याख्याऐं की गई है।

सन्दर्भ सूची (षष्ठम अध्याय)

1. भारतीय संस्कृति का इतिहास – प्रो0 कालीशंकर भटनागर, तृतीस संस्कारण 1971 – 72 – पृष्ठ 3–6
2. *भारतीय संस्कृति का इतिहास – डॉ0 वी0 डी0 शुक्ला – पृष्ठ –7/10*
3. भारतीय संस्कृति का विकास –प्रो0 कालीशंकर भटनागर–पृष्ठ –45–67
4. भारतीय संस्कृति का इतिहास – डॉ0 वी0 डी0 शुक्ला – पृष्ठ– 68–99
5. भारतीय संस्कृति इतिहास – प्रो0 कालीशंकर भटनागर –पृष्ठ– 289,319
6. भारतीय संस्कृति इतिहास– प्रो0 कालीशंकर भटनागर –पृष्ठ –523–532

अध्याय–सप्तम

श्रमणा में भक्ति एवं दर्शन

(अ) श्रमणा में भक्ति :

1. वैष्णव भक्ति उदमव और विकास : श्रमणा महाकाव्य में भक्ति और दर्शन की दृष्टि से देखा जाये तो दर्शन के दो पक्ष होते है। 1. योग 2. आध्यात्य ।

योग का अर्थ है परमात्मा से सीधा जुड़ जाना और आध्यात्य का अर्थ है संसार से जुड़ कर परमात्मा की ओर मुड़ जाना। भक्ति इन दोनो में उभयनिष्ठ है। भक्ति प्रेम का वह स्वरूप है जो अलौकिक स्वरूप में आता है। प्रेम यदि वासनात्मक होगा तो वह लौकिक प्रेम कहलाता है और जब वह अलौकिकता से जुड़ जाता है अर्थात वासना रहित प्रेम ही भक्ति का स्वरूप ले लेता है। भक्ति में भावनानिहित होती है। इसमें भक्त और भगवान दो अलग–अलग होते है। भक्ति के प्रकारों में विद्वानों व संतो के विभिन्न–विभिन्न मत है। मुख्यतः दास भक्ति, सख्य भक्ति और सम्बन्ध भक्ति। ये तुलसीदास जी का कथन है :–

गुरू पित मात बन्धु पति देवा,
सबमो कह जाने दृढ़ सेवा।

अर्थात भगवान में गुरू की, पिता माता की, बन्धु की, सखा की, पति की, देवता की भावना स्थापित करके उनकी सेवा में लग जाना ही भक्ति है। श्रमणा महाकाव्य में नायिका श्रमणा को भक्ति का अवतार ही कहा गया है। श्रमणा महाकाव्य के तृतीय सर्ग में सुतीक्षण के मुख से कहलाया गया है :–

दासरथी श्रीराम ब्रह्म है, माया सात्विक सीता,
भक्ति स्वरूपा प्रकट हुयी है, श्रमणा ज्ञान पुनीता।

भक्ति अभाव में पलती है, पले विभव में माया,
माया भजती ब्रह्म, ब्रह्म ने सदा भक्ति गुण गाया।

1. श्रमणा में वैष्णव भक्ति का स्वरूप :

भक्ति के दृष्टिकोण से अभी तक जो मान्यताऐं है उनमें अवतार सर्वमान्य तथ्य है, क्योंकि राम विष्णु के ही अवतार थे। अतः श्रमणा में भी यही मान्यता प्रतिपादित की गई है। विष्णु तो राम का मानव रूप अवतार ही है अतः विष्णु की आराधना करने वाले सभी वैष्णव भक्ति में आते है। तुलसीकृत रामचरित मानस, आनन्द रामायण, आध्यात्म रामायण, यहां तक कि बाल्मीकि रामायण में भी विष्णु का अवतार राम को माना गया है। इसी परम्परा में राम को कवि ने विष्णु का अवतार माना है। वैष्णव भक्ति का विकास मूलतः दक्षिण भारत में हुआ है जिसमें कम्बन रामायण में उल्लेख है। इसके साथ ही सूर्य, नामदेव, रैदास, नरसी भक्त, मीरा आदि ने वैष्णव भक्ति को पर्याप्त रूप से विकसित किया है। उत्तर भारत में तुलसी ही ऐसे महान वैष्णव संत है, जिन्होंने राम के माध्यम से न केवल उत्तर भारत में बल्कि सम्पूर्ण देश में वैष्णव भक्ति का राम के माध्यम से प्रचार– प्रसार किया है। इस प्रकार भारत में सबसे अधिक जो मान्यता मिली है वह वैष्णव भक्ति को ही मिली है इनके अतिरिक्त नानक, दादू, कृतवास, विद्यापति आदि ने भी वैष्णव भक्ति का विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

2. श्रमणा में नवधा भक्ति एवं उसका विवेचन :

श्रमणा महाकाव्य में तुलसी की ही भांति कवि ने श्रमणा महाकाव्य में नवद्या भक्ति की विवेचना की है। किन्तु कवि ने इसमें एक विशेष प्रकार का काव्य कौशल प्रस्तुत किया है। तुलसी ने अरण्य कांड में जो नौ भक्तियां बताई है वो इस प्रकार है :–

प्रथम भक्ति संतह कर संगा,

दूसरि रति कथा प्रसंगा।

गुरू पद पंकज सेवा, तीसरी भक्ति अमान,

चौथी भक्ति मम गुन गन करई कपट तजि गान।

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।

छठ दम सील वृति बहु करमा, निरत निरंतर सज्जन धर्मा।

सातव सम मोहि मय जगदेखा, मोहे संत अधिक करि लेखा।

आठव जथा लाभ संतोषा, सपनेहू नहिं देखई पर दोसा।

नवम सरल सन छल हीना, मम भरोस हिय हरष न दीना

इस प्रकार तुलसीदास जी ने भक्ति के नौ लक्षण बताये है। बिलकुल इसी परम्परा को लेते हुये कवि ने एक नवीनतम कल्पना की है। इस नवधा भक्ति को कवि ने श्रमणा के पिता द्वारा श्रमणा को पतिव्रत धर्म के माध्यम से नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है:–

वर सुयोग्य सखियो से शुभ दीक्षा ली है,

रिषि मुनि दाराओं ने तुमको, धर्म दीक्षा दी है।

वर विवेक होता है वत्से, जब संगति होती है,

फिर विवेक ज्ञान से, ज्ञान से मन में रति होती है।

पति गृह में वे शिक्षा–दीक्षा, सार्थक सभी बनाना,

सास श्वसुर गुरजन सेवा में तन–मन सदा लगाना।

निश्छल मन से सदा श्रेष्ठ गुण, पति के वर्णन करना,

कथन सदा ही सत्य मानकर, दृढ़ हो उस पर चलना।

पति की सभी भावनाओं में कर निज भाव समर्पण,

सरल चित्त से सब स्वकर्म, कर देना उनको अर्पण।

पति के सभी सगे सम्बन्धी, उनका रूप समझकर,

यथा योग्य उनकी सेवा में, रहो सदा ही तत्पर।

दोष दूसरों के न देखकर, करें स्वदोष निवारण,

यथा लाभ संतोष मानकर, करें धैर्य को धारण।
निर्विवाद निश्छल सहर्ष अति सरल शील हो मन में,
रहे सदा अविलम्ब न लाये अविश्वास जीवन में।
यह नव गुण शोभा देते है वत्से पतिव्रता में,
सुर नर मुनि गंधर्व नहीं आते, जिनकी समता में।

इस प्रकार कवि ने पूर्णतः नवधा भक्ति को आत्मसात् करके पतिव्रत धर्म में समाहित कर दिया है। उपरोक्त छंदों में भक्ति के नौ गुण दिग्दर्शित कर दिये गये है। यो तो अनेक सर्गो में भक्ति का स्वरूप भिन्न–भिन्न प्रसंगों के माध्यम से दिखाया गया है किन्तु यहां उनको फिर भी एक ही स्थान पर समग्र रूप से प्रस्तुत कर दिया है, यही कवि का काव्य कौशल है।

(ब) श्रमणा का दार्शनिक पक्ष : दर्शन की मीमांसा भक्ति प्रसंग में थोड़ी बहुत कर दी गई है जैसा कि कहा गया है दर्शन का अर्थ देखना है। जिस प्रकार स्थूल नेत्रों से सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं को देखते है उसी प्रकार मन की भावनाओं से अर्थात ज्ञान दृष्टि से संसार का देखने को ही दर्शन कहते है। दर्शन के दो भाग होते है। योग और आध्यात्म। योग का अर्थ परमात्मा से जुड़ जाना और आध्यात्म से तात्पर्य संसार से जुड़ कर परमात्मा की ओर मुड़ जाना। श्रमणा महाकाव्य में दर्शन योग और आध्यात्म की यत्र–तत्र सर्वत्र विवेचना की गई है जिसका आधार उपनिषद् एवं वेदान्त है। श्रमणा महाकाव्य में द्वैत और अद्वैत ब्रह्म का निरूपण किया गया है। श्रमणा महाकाव्य के अनुसार ब्रह्म अनेक रूपों में प्रकट होता है और वही जीव की संज्ञा धारण करता है। यहां एक ही तेज ब्रह्म का संकेत है वही उपरोक्त सूत्र के अनुसार विभिन्न कणों में विभक्त होता है। उस चेतन स्थूल के पंचतत्व क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु के कण जब घेर लेते है तब वह जीव की संज्ञा हो जाती है यही विखरा हुआ चेतन कण अपने अंशी से मिलना चाहता है यही प्रक्रिया सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है। जिस प्रकार

स्थूल प्रकृति के पांच तत्व है, उसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति के भी पांच तत्व है अंतः करण चतुष्टय –मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और आंशिक आत्मा। इस सूक्ष्म प्रकृति में निबद्ध होकर जीवात्मा की संज्ञा धारण करती है। आत्मा और परमात्मा का यही सम्बन्ध है। इस प्रकार सम्पूर्ण श्रमणा महाकाव्य में दर्शन का वर्णन यत्र–तत्र सभी सर्गो में देखने को मिला है। जो परम्परा को आगे बड़ाने के लिये आवश्यक होगा।

(स) श्रमणा में दार्शनिक विचारों का विवेचन :

1. ब्रह्म : सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ब्रह्म समाया हुआ है यह सब ब्रह्म का ही स्वरूप है श्रीमद भगवत गीता में जो विराट दर्शन अर्जुन को दिखाया गया है तथा उपनिषद में सहस्त्रशीर्षा पुरूषः मंत्र है उसका विश्लेषण श्रमणा महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में अतिसरल ढंग से समझाया है उस ब्रह्म के हजारो शीष है, हजारो पैर है, हजारों आंखे है, हजारो हाथ आदि असंख्य अवयव है।

जो मस्तिष्क प्रधान बुद्धिवर वर्ग जगत में आता,
वही विराट स्वरूप राम का श्रेष्ठ शीर्ष कहलाता।
बल प्रधान रक्षण में तत्पर जो जग में बन जाये,
वहीं विराट स्वरूप राम की है अति प्रबल भुजायें।
पोषण भरण संचरण वितरण रत जो वर्ग मना है,
वहीं विराट राम के वपु का अदभुत उदर बना है।
सेवारत रह जा समस्त वपु करते भार वहन हैं,
वहीं विराट राम विग्रह के पावन परम चरण हैं।
शीष अनन्त अनन्त बाहुयें, उदर अनन्त संभाले,
पग अनन्त के जग अनन्त की कथा कौन कह डाले।
राम सर्वभय सब जग का सम्पुट विमर्शन हैं यह,
राम रूप का यह विराट सामाजिक दर्शन है यह।

इस प्रकार राम की और ब्रह्म की एक रूपता का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है।

2. श्रमणा में ओम् का स्वरूप : श्रमणा महाकाव्य के प्रथम सर्ग का मंगलाचरण प्रणव अर्थात ओउम से प्रारम्भ किया है। यही अक्षर ब्रह्म सृष्टि का उत्पादन कर्ता और पालन कर्ता है। माण्डूकोपनिषद के मंत्र आठ, नौ, दस, ग्यारह में इस ओउम की विशद विवेचना की गई है। उस ब्रह्म के यह तीन पाद है जिसके द्वारा वह संसार की उत्पत्ति और पालन कर्ता है। ओउम का पहला शब्द अ है। किसी भी अर्थ को बताने वाले जितने भी शब्द है उन सबसे " अ " व्याप्त है। स्वर अथवा व्यंजन आकार से रहित नहीं है।

ओउम् कार की दूसरी मात्रा " उ ". है। यह अ और म दोनों के बीच में होने के कारण इन दोनों के साथ इनका घनिष्ट सम्बन्ध है अतः यह उभय स्वरूप है। यह दूसरा पाद स्थूल जगत के प्रकट होने के संकल्प द्वारा जो सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न होती है जिसका वर्णन जीव सृष्टि के नाम से आता है। इन दोनों से ही सूक्ष्म जगत का घनिष्ट सम्बन्ध है। इस प्रकार सूक्ष्म जगत रूप शरीर में चेतन प्रकाश स्वरूप हिरण्य गर्भ परमेश्वर इसके अधिष्ठाता होकर रहते है।

ओउम कार की तीसरी मात्रा " म " है यह " म " धातु से बना है। " म" का अर्थ है माप लेना अर्थात अमुक वस्तु इतनी है यह समझ लेना है म अ और उ के पीछे उच्चरित होता है। इस कारण दोनों का माप इसमें आ जाता है। म का उच्चारण होते-होते मुख बन्द हो जाता है। इस प्रकार स्थूल'-सूक्ष्म और कारण इन तीनों अवस्थाओं में स्थित जगत को जानने वाला है। कारण जगत से ही सूक्ष्म और स्थूल जगत की उत्पत्ति होती है।

3. ज्ञान और भक्ति का विवेचन : श्रमणा महाकाव्य के सप्तम सर्ग में ज्ञान और भक्ति का बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है। विश्वामित्र कहते है – ज्ञान की सीमा नहीं है इसलिये उसकी सफलता में संदेह रहता है और उसमें कभी भटक जाने का अंदेशा रहता है। ज्ञान में भ्रम, विस्मृत, अहं, अगमता एवं कटुता का अनुभव होता है, उसका चिन्तन कभी समाप्त न होकर सदैव बना रहता है। ज्ञानी और मूर्ख को एक ही श्रेणी में लाते हुये कवि कहता है :–

ज्ञान सदा गतिमान यहां मन के समान होता है।
कटु, भ्रम विस्मृत, अहं, अम, सन्देहवान होता है।
ज्ञानी एवं मूर्ख कभी, निश्चित नहीं रहते हैं,
वे भव की, वे वैभव की, चिर चिन्ता में बहते हैं।

भक्ति का विश्लेषण करते हुये कहा गया कि भक्त की परीक्षायें निरन्तर होती रहती हैं किन्तु उसकी अभिलाषायें पूरी हो जाती हैं भक्त का स्वयं कोई अस्तित्व नहीं होता क्योंकि वह इष्ट को ही सब कुछ मानता है। भक्त की भगवान से मिलने की अभिलाषायें ही उसकी चिन्ता का विषय होता है किन्तु उसकी चिन्ता, चिन्ता नहीं मणि है। भक्त ज्ञान का फल मोक्ष को नहीं चाहता है। प्रेम की अन्तिम परकाष्ठा ही भक्ति है। भक्त की अभिलाषाएं भगवान सदैव पूरा करता है–

भक्त भक्ति की चिन्ता, चिन्ता नहीं कि चिन्तामणि है,
वह अपने आराध्य देव रूपी, मणि का ही फणि है।
उसके ही प्रकाश में जग में, निर्भय विचरण करता,
मोक्ष ज्ञान के फल को कडवा समझ, फेंकता फिरता।

4. पुर्नजन्म की व्याख्या : श्रमणा महाकाव्य के नवम सर्ग में पुर्नजन्म की व्याख्या की गयी है। महान पुरूष अपना कार्य पूर्ण करने के

पश्चात संसार को छोड़ देते है। उर्द्धरेता आत्मायें शरीर को शीघ्र त्याग देती हैं जिससे कर्म फल से शीघ्र मुक्ति मिल जाये–

कर स्वकार्य सम्पन्न महाजन, लोक छोड़ देते है,
तन या मन से जग से नाता, शीघ्र तोड़ देते है।
शीघ्र शीघ्र त्यागा करतीं तन उर्द्धरता आत्मायें,
ताकि कर्म फल कर समाप्त वे, शीघ्र मुक्ति पा जायें।

श्रमणा महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में जीव के आवागमन का विश्लेषण मौलिक रूप में किया गया है। आवागमन का अर्थ जीव से नहीं बल्कि इच्छाओं पर निर्भर रहता है। इच्छाओं का आना–जाना ही पुर्नजन्म का कारण बनता है। इच्छाओं का नष्ट होना असम्भव है क्योंकि इस संसार रूपी वृक्ष का बीज ही इच्छा है जब तक बीज है तब तक वृक्ष है और वृक्ष है तो बीज का अभाव नहीं हो सकता। यह क्रम अनादि है मात्र परिवर्तन दिखाई पड़ता है। ज्ञानी मनुष्य इच्छाओं को कम करते चले जाते है और जितना कम कर लेते है उतना ही उनको सुख प्राप्त होता है।

5. धर्म की मीमांसा : श्रमणा महाकाव्य में धर्म की व्याख्या बहुत बड़े स्तर पर की गई है। क्योंकि श्रमणा महाकाव्य में कर्म को ही धर्म का आधार माना गया है। श्रमणा महाकाव्य में धर्म का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह विशेष प्रकार का है। श्रमणा महाकाव्य के दसवें सर्ग में वर्णो का धर्म बताते हुये कहते है कि कर्म से ही वर्ण और वर्णो के कर्मो को ही धर्म कहते है। श्रमणा महाकाव्य में धर्म की रक्षा के लिये भगवान विष्णु ने भगवान राम का अवतार लिया था इस बात की पुष्टि सभी धार्मिक ग्रन्थों में मिलती है–

धर्म सहित जीवन कलिका में तीनों फल फलते है,
सहज रूप में तभी मोक्ष में परिणित हो मिलते है।

बिना धर्म के अर्थ, अर्थ बिन काम न होता पूरा,
तीनों में व्यतिक्रम पड़ने से रहता मोक्ष अधूरा।
अनुचित उचित विवेक धर्म ही करता है निर्धारण,
इसीलिए अनिवार्य हुआ है इन पर धर्म नियन्त्रण।

6. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विवेचन : श्रमणा महाकाव्य में मानव जीवन का लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष है किन्तु कैसे और क्यों का विश्लेषण बहुत ही सैद्धान्तिक क्रम से महाकाव्य में किया गया है। काम, अर्थ और धर्म अन्त में मोक्ष में लय हो जाते हैं काम की पूर्ति के लिये ही अर्थ की आवश्यकता पड़ती है किन्तु काम और अर्थ की स्वतन्त्रता अथवा अनियन्त्रण मानव में उच्छ श्रृंखलता एवं स्वेच्छाचारिता उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिए इन दोनों को नियंत्रित करने के लिए धर्म का होना अनिवार्य है।

काम अर्थ और धर्म मोक्ष फल चारों कहलातें है,
प्रथम तीन अन्ततः मोक्ष में परिणित हो जाते है।
काम सभी मानव कर्मो का अनुप्रेरक होता है,
कर्म पूर्ति के हेतु अर्थ भी आवश्यक होता है।
काम अर्थ होकर स्वतन्त्र अनियंत्रित हो जाते है,
मानव में उच्छृंखलता का अंकुर बो जाते हैं।

काम अर्थ, धर्म, मोक्ष का यह क्रम रचनाकार की मौलिक उद्भावना है जो तर्क संगत है।

सन्दर्भ सूची (सप्तम अध्याय)

1. *रामचरित मानस – बालकाण्ड – दोहा– 11*
2. तृतीय मुण्ड कोपनिषद – प्रथम खण्ड़, श्लोक –1
3. रामचरित मानस – अरण्य काण्ड़ – दोहा – 15–16
4. ऐतरेय आरण्यक – 2/3/6
5. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचना।
   मां कर्म फल हेतु र्भूर्मा ते सडोस्वकर्मणि।। गीता– अध्याय–2 श्लोक 47
6. साहित्य संदर्भ – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
7. मैन्थ्यू आर नोल्ड – Poetry is a critism of life
8. रामचरित मानस – बालकाण्ड़ – दोहा – 7 व 8
9. मनु स्मृति – अध्याय–4
10. रामचरित मानस – किष्किन्धा काण्ड़ – दोहा– 14 व 15
11. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान–पुखराज जैन पृष्ठ 37
12. बुन्देल भारती आभार – पृष्ठ–3
13. रामचरित मानस – बालकाण्ड़ – दोहा– 120, 121
14. कुछ प्रमुख विचार धाराऐं – श्रमणा महाकाव्य पृष्ठ–3 व 4
15. वृहत साहित्यिक निबन्ध – डॉ0 राम सागर त्रिपाठी – पृष्ठ–660
16. प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन– डॉ0 द्वारका प्रसार सक्सेना–पृष्ठ– 138
17. केशव और उनका साहित्य – डा0 विजय पाल सिंह– पृष्ठ – 284
18. हिन्दी साहित्य का आदिकाल – पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी – पृष्ठ– 84
19. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण – डॉ0 किरण कुमारी – पृष्ठ – 5
20. श्रीमद् भागवत स्कंद – अध्याय–20 श्लोक–15–96–17–33

अध्याय–अष्टम्

उपसंहार

राम काव्य परम्परा में श्रमणा का महत्व एवं स्थान

राम काव्य परम्परा का श्रोत वैदिक साहित्य से ही माना जा सकता है। उपनिषदों रामोपनिषद भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं किन्तु रामचरित परम्परा का प्रमुख श्रोत बाल्मीक रामायण भी है जिसको विद्वानों ने रचनाकार लगभग 3000 ई0पू0 का माना है। तब से अब तक अनेक काव्य रामचरित पर रचे गये है। यह परम्परा अतीतकाल से चली आ रही है जो गोस्वामी तुलसीदास जी पर ठहरी सी प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में वह रूकी नहीं है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में :–

"राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है"

संस्कृत और हिन्दी का शायद ही कोई कवि ऐसा हो जिसने रामचरित पर अपनी लेखनी न चलाई हो यहां तक की उर्दू, अरबी, फारसी एवं विश्व की समस्त भाषाओं में राम पर कुछ न कुछ अवश्य लिखा गया है इसी धारा को आगे बनाये रखने के लिये श्रमणा महाकाव्य का प्रणयन हुआ है। सम्भवतः बुन्देलखण्ड में रामचरित पर ज्ञात, अज्ञात और भी रचनाऐं हो सकती है किन्तु वर्तमान में प्रकाशित काव्य के रूप में श्रमणा (शबरी) के राम की उपलब्धि इस श्रृंखला को आगे बढ़ाने में सक्षम है। प्रथम अध्याय में महाकाव्य का स्वरूप और उसका रूपात्मक परिचय विस्तार पूर्वक दिया गया है जिसकी विस्तृप्त विवेचना से सिद्ध होता है कि श्रमणा महाकाव्य प्राचीन भारतीय पद्धति एवं पाश्चात्य पद्धति दोनों को लक्षण स्वरूप अपने में

संजोए हुये है। इसके अतिरिक्त वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल कुछ मौलिक मान्यताऐं भी रचनाकार ने प्रस्थापित की है। इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य और महाकाव्य दोनो का स्वरूप प्रस्तुत करता है।

दूसरे अध्याय में श्रमणा महाकाव्य के रचनाकार श्री अवध किशोर (अवधेश जी) का व्यक्तित्व, जीवन परिचय, कृतत्व एवं उनका समीक्षात्मक अध्यन किया है।

तीसरे अध्याय में पौराणिकता, मौलिकता और प्रयोजन के आधार पर श्रमणा महाकाव्य का स्थान निश्चित किया गया है। प्रेमा भक्ति को लेकर ईश्वर राम का चरित्र मानवीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है ताकि मानव उसका अनुसरण कर सके। इस प्रकार वर्तमान की आवश्यकतानुसार बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का लोक कल्याण उददेश्य की पूर्ति हुयी है इस अध्याय में इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया है कि राम के मानवीय चरित्र की कसौटी पर खरा उतरने में कोई कमी न रह जाये ताकि वर्तमान के लिये वह आर्दश बन सके और इसके साथ–साथ श्रमणा महाकाव्य की पात्र योजना के अंतर्गत श्रमणा महाकाव्य में आये हुये लगभग सभी पात्रों के चरित्रों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला गया। यह अध्याय महाकाव्य का सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय में पात्रों का संक्षिप्त रूप से ही आर्दश चरित्र प्रस्तुत हुआ है किन्तु वह सर्वथा मौलिक है जो अन्य रामायणों में मौलिक नहीं है महाकाव्य में आये हुये पात्रो की जीवन व्यापी मनोवृत्तिया इस संचार में सहायक हुयी है। उनके शील निरूपण का स्थायित्व चरित्र को और प्रभावी बना देता है। प्रत्येक पात्र में शील रूप को प्रतिष्ठित करने के लिये अनेक स्थलों पर सशक्त अभिव्यक्ति बन गई है।

श्रमणा महाकाव्य के चतुर्थ अध्याय में काव्य अनुभूति पक्ष का ब्यौरा दिया गया है। जिसमें आये हुये सभी रसों की मीमांसा करते हुये उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया गया इसके साथ ही रचनाकार ने जो नवीन उद्भावनाऐं रसों के बारे में की है वे भी इस अध्याय में आ गई है। श्रमणा महाकाव्य का प्रधान रस शान्त है जो श्रृंगार से उद्भूत हुआ है। श्रृंगार रस सात्विक रूप में प्रस्तुत होकर शान्त में परिणित हो गया है। ऐसे उदाहरण अन्य ग्रन्थों में कम ही मिलते है। मार्मिक स्थलो पर प्रायः करूण, वात्सल्य और उत्साह रस हृदय का स्पर्श करने वाला दिखाई पड़ता है। हाव, भाव, अनुभाव, विभाव के अंतर्गत शब्दों की व्यंजना चिन्ताकर्षक हुयी है।

श्रमणा महाकाव्य के पॉचवे अध्याय में अभिव्यक्ति पक्ष को रखा गया है। भाषा का स्वरूप, अलंकार योजना, रीति एवं वृत्ति योजना, गुण–दोष, छंद विधान आदि की विस्तार पूर्वक विवेचना की गई है। श्रमणा महाकाव्य में प्रायः सरल हिन्दी का प्रयोग किया गया है। कवि बुन्देली और बृजभाषा का भी प्रर्वतक है इसलिये कहीं–कहीं बुन्देली के भी शब्द आये है। ग्रन्थ की भाषा मुहावरेदार गतिशील है। भाषा का सौष्ठव सुगठित है। कोई भी शब्द हटाकर यदि पर्यायवाची शब्द रखा जाये तो वह अलग दिखाई पडेगा अर्थात महाकाव्य की भाषा शैली अपने ढंग की अनूठी है। प्रत्येक कथन पाठक या श्रोता को आकर्षक करता है। विषय को मार्मिक और प्रभावशाली बनाता है। लक्षणा, व्यंजना पर्यायोक्ति आदि अलंकारों का बड़ा सुन्दर समावेश है छंद विधान अतीत के कवियों की परम्परा के अनुकूल है परन्तु कुछ मौलिक छंद भी है सारा महाकाव्य प्रतीक योजना और बिम्ब प्रधान से सजा संवरा है।

श्रमणा महाकाव्य के छटे अध्याय में भारतीय संस्कृति को उच्च स्थान दिया गया है क्योंकि श्रमणा महाकाव्य एक पौराणिक महाकाव्य है जिसमें श्रमणा (शबरी) के माध्यम से भगवान राम की उपासना की गई है। भारतीय संस्कृति बहुआयामी संस्कृति है सहस्त्रों वर्षो से प्रवाहमान इसकी धारा हमें अध्यत्न शीलता से सराबोर कर रही है अपनी सुदृढ़ता एवं व्यापकता के कारण वह आज भी अक्षुण्ण है एवं आर्यावत को संस्कारित तथा अनुप्राणित करती हुयी अग्रसारित है। भारतीय संस्कृति के मूल आधार वेद है। वेद सिंधु घाटी सभ्यता से भी प्राचीनतम एवं सर्वोत्तम है। विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में इतने परिवर्तन होते आये कि उनका मूल रूप ही नष्ट हो गया। किन्तु भारतीय संस्कृति ने परिवर्तनों के होते हुये भी अपने मूल रूप का परित्याग नहीं किया। विभिन्न परम्पराओं का मूल इतना पुष्ट एवं गहरा था कि समय उन्हें खण्डित कर फेंक नहीं सका और न ही बाहरी प्रभाव उन्हें नष्ट कर सके। भारतीय संस्कृति सबसे सरल संस्कृति है इसमें कठोरता तथा कट्टरता का कोई स्थान नहीं है। विभिन्न संप्रदाओं के साथ समानता एवं भाई चारे के वरताव को बनाये रखना भारतीय संस्कृति की महत्ता है। और उसके साथ–साथ भारतीय संस्कृति आशावादी संस्कृति है। इसमें निराशा का कोई स्थान नहीं है। भारतीय संस्कृति में पुर्नजन्म की अवधारणा को भी स्वीकार किया गया है। व्यक्ति के कर्मानुसार जन्म मृत्यु का चक्र सदैव चलायमान रहता है। इस प्रकार पुर्नजन्म की परिकल्पना उचित है ये अन्य संस्कृति में नहीं है।

भारतीय संस्कृति में ग्रहण क्षमता बहुत है जो अपने गुणों का आदान–प्रदान करते हुये दूसरी संस्कृति के गुणों को ग्रहण करने के लिये सदैव तत्पर रहती है। गुणों को अपने में समाहित कर लेती है

और उस संस्कृति के दोषों को ग्रहण नहीं करती है। इसी कारण श्रमणा महाकाव्य में भारतीय संस्कृति को महत्ता प्रदान की गई है जो अवर्णनीय है।

श्रमणा महाकाव्य के सातवें अध्याय में श्रमणा में भक्ति एवं दर्शन के पक्ष को रखा गया है। जिसमें दर्शन, धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, समाज, राजनीति, आर्थिक सिद्धान्तों की विवेचना करते हुये उनका लोक कल्याण की दृष्टि से उनका मापदण्ड स्थापित किया गया है। कुछ ऐसे भी विचार है जो सर्वथा मौलिक होते है। रचनाकार ने अनेक नवीन उन्मेषों के द्वारा जो तथ्य प्रस्तुत किये है वे सर्वथा मौलिक है तथा उनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में कर्म, ज्ञान और उपासना लोक धर्म के तीनो अवयवों की स्थापना सरल विचारों मे की गई। तुलसी के काल में उपासना की प्रधानता। ज्ञान और कर्म गौण थे। वर्तमान में समाज को कर्म की ओर आकर्षित करने की अधिक आवश्यकता थी क्योंकि अब हमारे देश में हमारा ही राज है। सम्पन्नता के लिये रचनाकार ने भारतीय जन समाज के हृदय में कर्म की ज्योति जगाने का कार्य किया है और श्रमणा कथा में लोक संग्रही (समाज की व्यवस्था और मर्यादा के रक्षक) लोक बाहय (स्वार्थी तत्व) अलोकोपयोगी (समाज पर बोझ) लोक विरोधी (लोक से ईर्ष्या रखने वाले) समाज के इन तत्वों का समावेश किया गया है। इस प्रकार भक्ति और प्रेम के परिकर में धर्म की रागात्मिका वृत्ति के साथ चरित्र के सौन्दर्य का साक्षात्कार कराते हुये आनन्दमय तृप्ति इस अध्याय से प्राप्त होती है।

इसके साथ–साथ प्रकृति के भिन्न–भिन्न स्वरूपों का सजीव चित्रण हुआ है। जिस प्रकार प्रबंध गत तीसरे अध्याय में चरित्र चित्रण में उनके शील, स्वरूप और अंतस की प्रवृत्तिों को प्रत्यक्ष किया गया है उसी प्रकार इस अध्याय में प्रकृति के नाना रूपों के

साथ मानव हृदय का सामाजंस्य दिखाकार वन, पर्वत, नदी, निर्झर, सूर्य, चन्द्र आदि प्रकृति के अवयवों के साथ पाठक को विम्व ग्रहण कराया गया है। महाकाव्य में वर्णित प्राकृतिक दृश्यों का समग्र चित्र समक्ष आ जाता है। प्रकृति के चित्रण में मानवीकरण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है। ऋतुओं का वर्णन, प्रातः और संध्या का वर्णन बड़ी सूक्ष्मदर्शिता के साथ किया गया है। कहीं–कहीं तो प्रकृति चित्रण इतना सुन्दर और मौलिक बन गया है कि पूर्वकालिक कवि वहां नहीं पहुँच पाये। सच तो यह है कि श्रमणा महाकाव्य का प्रकृति चित्रण बिलकुल नवीन परिवेश में प्रस्तुत हुआ है जो अन्य की तुलना में अद्वितीय है।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य के सातों सर्ग का निष्कर्ष संक्षिप्त में दिया गया है। इसके साथ यह महाकाव्य वर्तमान युग की समस्याओं का विश्लेषण और निदान भी प्रस्तुत करता है।

निष्कर्षतः महाकाव्य युग परिवर्तन का प्रतीक है, वह अपने नियमों के सांचे में ढला होता है वारीक दृष्टि से देखा जाये तो ऐसा प्रत्येक महाकाव्य में मिलेगा। जो परम आवश्यक है।

श्रमणा का संदेश– जन मानस पर प्रभाव

अतीत काल से आज तक साहित्य की विधाओं में अनेक परिवर्तन हुये है। भाषा और काव्य शैलियां बदली हैं, व्याकरण बदले हैं, मनीषियों ने महाकाव्य की भिन्न–भिन्न परिभाषायें, लक्ष्य और मापदण्ड प्रस्थापित किये है। श्रमणा महाकाव्य के कवि ने बहुत कुछ परम्परा से लिया हैं। प्रारम्भ में अतीत और वर्तमान के कवियों की वन्दना की हैं। यह परम्परा गोस्वामी तुलसीदास से ली गई है किन्तु कवि ने इन कवियों को देव कोटि में प्रस्थापित करके प्राचीनता और नवीनता का समावेश किया है। अतीत और वर्तमान काल की सभी

शैलियों का इस महाकाव्य में समावेश है। छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि सभी वादों का दर्शन इस महाकाव्य में होता है। प्राचीन ग्रन्थों में महाकाव्य के जो लक्षण और स्वरूप इन सब में दिये है उनका समावेश हुआ है। श्रमणा (शबरी) को महाकाव्य की नायिका बनने के सभी गुण सन्निहित करके पर्याप्त तर्को से उसे नायिका की संज्ञा प्रदान की गई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह महाकाव्य प्राचीन और वर्तमान साहित्य विधाओं की सभी कसौटियों पर खरा उतरा है जो मौलिकतायें दी गई है। उसके बारे में कवि ने लिखा है :–

नूतन कार्य रूढ़ि में यदिपि विकृति कहा जाता है,
लेकिन परिवर्तन विकास का लक्षण कहलाता है।

श्रमणा महाकाव्य का कथानक यदपि पुराणेतिहासिक धरातल पर है किन्तु वर्तमान के सांचे में सम्पूर्ण रूप से ढला हुआ है। साहित्य समाज का दर्पण है " इस सूत्र के अनुसार इस महाकाव्य में अतीत और वर्तमान का उज्जवल और स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। चरित्र, राष्ट्रीयता और वर्ग भेद आज की ज्वलंत समस्या हैं। इन समस्याओं का निदान पात्रों के चरित्र चित्रण में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। संचित ज्ञान को आचरण में लाना ही चरित्र है। प्रथम सर्ग इसकी भूमिका है आज परिवारों में भी सामान्जस्य नही हैं, इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये तृतीय सर्ग में शंकर के परिवार में विरोधाभास होते हुये भी परिवार के मुखिया शंकर द्वारा सामान्जस्य रखने की बात कहीं है। धर्माचरण भी चरित्र की भूमिका प्रस्तुत करता हैं। इस तथ्य पर तृतीय सर्ग में प्रकाश डाला गया हैं। चतुर्थ सर्ग में कैकेयी के माध्यम से राष्ट्रधर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की बात

कहीं गई हैं। दशरथ का राज्य प्रजातंत्र के मूलभूत आधारों पर चला है जिसका विवरण चतुर्थ सर्ग में आया है। किष्किन्धा में सुग्रीव को राजा बनाने की प्रक्रिया निर्वाचन द्वारा की गई है। जन कल्याण के लिये महाराज रघु का सामूहिक यज्ञ का जो विधान दिया गया है वह जन कल्याण का उत्कृष्ट नमूना हैं। ग्यारहवें सर्ग में राम ने भरत को उपदेश दिया है कि लोक संकट निवारण के लिये राज्य सिंहासन आवश्यक नहीं है। समाज विरोधी तत्वों को उचित दण्ड देना आवश्यक है। यह तथ्य जयन्त और सूर्पनखा के माध्यम से स्पष्ट किया है। महाकाव्य में सीता के परित्याग प्रसंग में कहा गया है कि लोक विरूद्व सबूत राजा को भी मानना आवश्यक है। इसमें लोक सेवा को श्रेयस्कर कहा गया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाकाव्य में राष्ट्रीय भावना और सामाजिक चरित्र का अनूठा संगम दिखायी पड़ता है। राष्ट्र की जनता के चरित्र पर ही राष्ट्र की महत्ता निर्भर होती हैं। इन आदि विषयों के साथ–साथ इस महाकाव्य में वर्तमान संदर्भों में राष्ट्र दर्शन की तर्क संगत प्रेरणा मिलती है।

युग के अनुकूल आज आवश्यकता है कि दलित, उपेक्षित और पिछड़े वर्ग के लोगों का स्तर ऊंचा उठाया जाये और उन्हें आदर्श मानवता की श्रेणी में लाया जाये। इस महाकाव्य के अनुसार राम ने भी कोल, भील, शबर, वानर आदि दलित उपेक्षित और पिछड़े लोगों को गले लगाकर उन्हें सम्मान दिया है। जटायु, अहिल्या, शबरी आदि दलित नारियों को अपने तर्कों से सम्बल देकर उनका स्तर ऊंचा उठाया है। कवि ने शूद्र को जन्म से नहीं कर्म से माना है। राम के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुये शूद्रों का चरणों से प्रादुर्भाव बतलाकर पवित्रता का आदर्श माना है। आज दलित

उपेक्षितों के उत्थान के लिये शासन और समाज दोनों के द्वारा भागीरथी प्रयास हो रहे हैं। सप्तम सर्ग में राम के द्वारा इसकी भविष्यवाणी की गई है। नवम सर्ग के अंत में दलित उपेक्षितों के पक्ष को सबल बनाने के लिये ऐसे तर्क दिये गये है जो आज भी अकाट्य है। शबर जाति में जन्मी श्रमणा अपने को बोझ नहीं मानती है वरन ईश्वर का अनुपम उपहार मानती हैं। दशवें सर्ग में वर्ण भेद पर कवि ने विश्वामित्र के द्वारा एक तर्क संगत और सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत की है। मतंगऋषि पात्रता को महत्व देते हुये विसंगत परम्परा को तोड़ने की बात कहते हैं। चौदहवें सर्ग में ऋषि मतंग के द्वारा जो तर्क और प्रमाण दिये है वह वर्तमान समाज के लिये आदर्श हैं। जो दलितों, उपेक्षितों व हरिजनों के लिये एक नया मार्ग प्रशस्त करते हैं। इससे न केवल उन्हें सम्बल मिलता है बल्कि जो उनको हेय दृष्टि से देखते है उनको भी वास्तविक ज्ञान की प्रेरणा मिलती हैं।

इस प्रकार श्रमणा महाकाव्य में लगभग सभी सर्गो में दलितों, उपेक्षितों आदि पर पर्याप्त तर्कसंगत विचार विमर्श के साथ निदान उपस्थित किये गये हैं जो समाज को लाभकारी सिद्व हुये है।

मानव समाज में नारी एक ऐसा प्रश्नचिन्ह है जिसका हल खोजना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। आज के युग में नारी की स्वतंत्रता पर अधिक जोर दिया जाता हैं जिसको न तो नारी ही समझ पा रही है और न पुरूष ही कोई हल ढूंढ पा रहा है। श्रमणा महाकाव्य की नायिका नारी है। रचनाकार नारी के प्रति परम आस्थावान है। वह सुयोग्य नारी में रूप, शील, सौन्दर्य, धैर्य, साहस, स्नेह, निपुणता, पवित्रता, दया, क्षमा, करूणा, कला, सरलता, लज्जा, श्रद्धा और ममता आदि गुणों का समावेश देखना चाहता है। कैकयी के माध्यम से नारी के शौर्य पराक्रम और समर्पण का चित्र प्रस्तुत किया है। कवि का मानना है कि मानव को मानव बनाने का श्रेय

नारी को ही है। श्रमणा महाकाव्य का कवि नारी की परतंत्रता का पक्षपाती नहीं है। शील, संकोच, लज्जा, जहां पुरूष के लिये दोष है वहीं नारी के गुण हैं। कवि नारी को अपने गुण, योग्यता, क्षमता बढ़ाने के लिये अवसर देने का समर्थक है। कवि नर नारी को पृथक नहीं मानता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाकाव्य में नारी की महत्ता स्थान–स्थान पर मुक्त कंठ से गायी गयी है किन्तु जहां नारी के चरित्र में विकृति दिखाई दी वहां उसकी भर्त्सना भी की गई है।

उपरोक्त शीर्षकों के अनुसार संक्षिप्त रूप से युगानुकूल नारी विषयक समस्याओं का निदान इस महाकाव्य में दिया गया है।

श्रमणा महाकाव्य में सर्वत्र गुरूत्व और गाम्भीर्य के दर्शन होते है। अब तक के रचे हुये रामचरित्र के अन्यान्य ग्रन्थों से अलग एक मौलिक गुरूता लिये हुये यह महाकाव्य दिखायी पड़ता है। ब्रज भाषाचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी अपनी सम्मति देते हुये कहते है–" इसमें पर्वतराज हिमालय की उच्चतम शिखरों की ऊंचाई को कल्पना ने छुआ है। यथार्थ के धरातल पर इसमें युक्ति वैचित्रय एवं चमत्कार उत्पन्न हुआ हैं।" आचार्य डा0 शुकरत्न उपाध्याय ने श्रमणा महाकाव्य की भूमिका में कहा है– अनेक स्थानों पर कवि की मार्मिक अभिव्यक्ति ने मेरे हृदय में सचमुच ही अपूर्व रस की सृष्टि की है। इस महाकाव्य की शतशः पंक्तियों में जीवन तथा सृष्टि की अनेक सच्चाइयों को मर्मवेधी कालजयी अभिव्यक्ति के द्वारा पवड़ लिया गया है। आधुनिक जीवन संदर्भो की दृष्टि के साथ तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत किये गये है। श्रमणा (शबरी) के जीवन के अनेक अनजाने प्रसंगों को कवि ने विविध उपलब्ध श्रोतों से प्राप्त कर कवि सृष्टि की प्रजापत्य चतुरायी के साथ प्रस्तुत कर अपने विराट ज्ञान, परिश्रम, अनुभव और गहरी पैठ का परिचय भी दिया है।"

उपसंहार स्वरूप कहा जा सकता है कि श्रमणा महाकाव्य रामकाव्य की परम्परा में एक नूतन कड़ी है। साकेत के पश्चात इस महाकाव्य की रचना भी बुन्देलखण्ड में ही हुई है। रचनाकार अवधेशजी ने युगानुरूप इस महाकाव्य में राम के उदात्त मानवीय स्वरूप को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने सरस भाषा में शबरी (श्रमणा) को केन्द्र में रखकर उसके संदर्भ से पूरी रामकथा को उपस्थित किया है। अवधेशजी का उद्देश्य प्राचीन रामकथा को दुहराना नहीं है। इसमें शबरी जिसे श्रमणा नाम दिया है, के उज्जवल और राम के प्रति अखण्ड समर्पित चरित्र का दिग्दर्शन कराया है। " साकेत " में कथा का केन्द्र बिन्दु (अयोध्या) है तो (श्रमणा) में पंचवटी प्रदेश, उसमें भी श्रमणा हैं। इसके साथ ही कवि ने कई युगीन एवं मानवता संबंधी शाश्वत् प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत कर ग्रन्थ को गरिमाशाली एवं बहुमूल्य बनाया है। रचनाकार ने श्रमणा को राम की प्रिया—आराधिका और अंत में भक्ति का मूर्तरूप बतलाकर सभी पात्रों को उसके समक्ष नतमस्तक दिखाया है। रामचरितमानस के भरत चरित्र की तरह कवि ने श्रमणा के चरित को गौरवान्वित किया है।

मैथिलीशरण गुप्त ने कैकेयी का चरित्र कुछ उभारा है परन्तु उससे भी आगे बढ़कर कवि ने कैकेयी को जन कल्याण में रत दिखाया है। इसमें राम वनगमन कैकेयी की धृष्टता के कारण नहीं अपितु लोक कल्याण और आर्य संस्कृति की रक्षा के हेतु हुआ है। कवि ने वर्ण व्यवस्था को जन्म के स्थान पर कर्म का आधार माना है। मतंगऋषि श्रमणा को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विश्लेषण करते हुये आदर्श मानव के गुणों का वर्णन करते हैं। यहां परहित धर्म को विस्तार और गहराई मिली है। बीसवां सर्ग ग्रन्थ का हृदय है। अंत में मोह को मन का बंधन बतलाकर वे अंर्तमुखी होने के उपाय बतलाकर उसके मोह को दूर करते हैं। कहा जा सकता है कि कवि द्वारा कथा

में किये गये अनेक परिवर्तन मौलिक होने के साथ–साथ घटना को अधिक सहज मानवीय और विश्वसनीय बनाया है। ग्रन्थ के मार्मिक प्रसंग है– शबरराज का पुत्री प्रेम, देवासुर संग्राम में कैकयी का कष्ट सहन, चित्रकूट में जनकराज की पत्नी का सीता को सन्यासिनी वेष में देखकर मूर्छित होना एवं राम से उलाहना, श्रमणा का वध के लिए रोके गये पशुओं के प्रति प्रेम, राम श्रमणा मिलन, वेदवती का रावण द्वारा स्पर्श किये जाने के बाद पश्चाताप और राम की दक्षिण से आये लोगों के समक्ष प्रतिज्ञा। कवि ने युगानुरूप अनेक विचारों को भरने का सफल प्रयत्न किया है। ग्रन्थ में उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना सर्वत्र की गई है। दूसरों की सेवा, अभिमान का त्याग और सबको समान मानने का परामर्श आद्योपान्त दिया गया है। ग्रन्थ की सरल भाषा, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा रामकथा के प्रति भक्ति भावना इस ग्रन्थ की उपलब्धियां है। इसके नायक तो राम ही है किन्तु सीता के स्थान पर श्रमणा नायिका है। ग्रन्थ नामकरण और प्रभाव की दृष्टि से नांयिका प्रधान है जैसे पदमावत्। तुलसी की शबरी से इस महाकाव्य की नायिका श्रमणा अनेक अर्थो में ऊंची है। सम्पूर्ण महाकाव्य में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक तत्वों की विवेचना तर्कसंगत हुई है। मनोविकारों का चित्रण स्थान–स्थान पर प्रभावशाली हैं। युगानुरूप विचारों में कवि ने आदर्श लोकतंत्र का समर्थन किया है। गांधीजी के सत्य, अहिंसा, हृदय परिवर्तन, अस्पृश्यता निवारण का समर्थन तथा अनास्था एवं अविश्वास के स्थान पर आस्था व विश्वास जगाने का भरसक प्रयत्न कवि ने किया है। आधुनिक विश्व की बर्बादी का कारण केवल भौतिक उन्नति की आपाधापी है। कवि ने इसे रावणत्व का प्रतीक बताया है। रावण ने भी आध्यात्मिक सिद्धि का प्रयोग भौतिक उपलब्धि के लिये किया। यही उसके विनाश का कारण बना। अवधेशजी ने इस महाकाव्य में

राम कथा और मानवता के प्रति नित्य घट रही है। आस्था को एकबार पुनः स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

1. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग–डा0 उदयभान सिंह
2. आधुनिक हिन्दी का विकास–डा0 श्री कृष्ण लाल
3. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना–पुत्तु लाल शुक्ल
4. कवितावली–गोस्वामी तुलसीदास
5. सिद्धांत और अध्ययन–द्वितीय सस्करंण–बाबू गुलाब राय
6. कवि पदमाकर और उनका युग–डा0 ब्रजनारायण सिंह
7. काव्य प्रदीप– रामबहोरी शुक्ला
8. काव्य कल्पद्रुम– (प्रथम भाग) रसमंजरी–सेठ कन्हैया लाल पोद्दार
9. काव्य दर्पण – पं0 रामदहिन मिश्र
10. काव्य शास्त्र– पं0 रामदहिन मिश्र
11. केशव और उनका साहित्य–रामचन्द्र शुक्ल
12. गोस्वामी तुलसीदास–रामचन्द्र शुक्ल
13. चिंतामणि भाग–1–रामचन्द्र शुक्ल
14. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त–लक्ष्मी नारायण सुधांशु

15. नव रस–द्वितीय संस्करण – बाबू गुलाब राय

16. निराला का काव्य– डा0 संतोष गोयल

17. पल्लव की भूमिका – सुमित्रानंदन पंत

18. प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन–डा0 द्वारका प्रसाद सक्सेना

19. प्राचीन स्वच्छंद काव्य धारा की विशेषताऐं (हिमालय पत्रिका) प्रो0 विश्वनाथ मिश्र

20. बुन्देल भारती – अवधेश

21. भारत का राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारतीय संविधान–पुखराज जैन

22. भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा–सम्पादक डा0 नगेन्द्र

23. भाषा विज्ञान–भोलानाथ तिवारी

24. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य–शिवसहाय पाठक

25. रस रत्नाकर –हरिशंकर शर्मा

26. रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण – डा0 आनंद प्रकाश दीक्षित

27. रामचरितमानस–गोस्वामी तुलसीदास (गोरखपुर प्रकाशन)

28. रामचरितमानस–गोस्वामी तुलसीदास (पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र)

29. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना–डा0 बच्चन सिंह

30. रीतिकालीन रीतिकवियों का काव्य शिल्प – डा0 महेन्द्र

31. रीति काव्य की भूमिका– डा0 नगेन्द्र

32. रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता– डा0 नगेन्द्र

33. वृहद् साहित्यिक निबंध– डा0 रामसागर त्रिपाठी

34. शब्द रसायन–देव

35. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त "प्रथम भाग" गोविन्द त्रिगुणायत

36. सत्यार्थ प्रकाश – दयानंद सरस्वती

37. साहित्यिक निबंध–राजनाथ शर्मा

38. साहित्य संदर्भ–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

39. सिद्धांत और अध्ययन "द्वितीय संस्करण" बाबू गुलाब राय

40. सूर और उनका साहित्य– डा0 हरवंशलाल शर्मा

41. सूरदास का काव्य वैभव–मुंशीराम शर्मा

42. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण– डा0 किरण कुमारी गुप्ता

43. हिन्दी के आधुनिक कवि– डा0 द्वारका प्रसाद सक्सेना

44. हिन्दी साहित्य का आदिकाल–पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

45. हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल

46. हिन्दी साहित्य– चतुर्थ संस्करण–श्यामसुन्दर दास

संस्कृत

47. आचार्य भरत मुनि का नाट्य शास्त्र

48. कठोपनिषद–तृतीय वल्लरी

49. काव्य प्रकाश—मम्मट

50. काव्यदर्श—दण्डी

51. काव्यालंकार—सूत्रवृत्ति—वामन

52. कृतवास रामायण—कृतवास

53. गरूण पुराण—पूर्वखण्ड अध्याय—143

54. तैत्तिरीयोपनिषद— षष्ठ अनुवाक

55. तृतीय मुण्डकोपनिषद—प्रथम खण्ड

56. बाल्मीकि रामायण—बाल्मीक

57. वृहद धर्मपुराण—प्रथम खण्ड

58. मत्सरू पुराण—अध्याय 12/68

59. मनुस्मृति—अध्याय—4—मनु

60. महाभारत—वेद व्यास

61. यजुर्वेद—31 वां अध्याय

62. रस गंगाधर—पं० जगन्नाथ द्वितीय आनन

63. रस तरंगिणी—भानुदत्त

64. साहित्य दर्पण— विश्वनाथ

65. स्कंद पुराण—प्रभास खण्ड अध्याय—278

66. स्कन्ध पुराण—वैष्णवखण्ड—वैशाख महात्म्य अध्याय 17 से 20

67. श्रीमदभागवत गीता—वेदव्यास—अध्याय—2 तथा 11

68. श्रीमदभागवत स्कन्ध– अध्याय–20

69. हरिवंष पुराण – विष्णु पर्व–9316–33

अन्य

70. *अखण्ड ज्योति (पत्रिका) श्री राम शर्मा*

71. प्रकर – दिल्ली– अक्टूबर 1992

72. प्राचीन स्वच्छंद काव्यधारा की विशेषतायें (हिमालय पत्रिका पटना से) प्रो0 विश्वनाथ मिश्र

73. Poetry is a critism of life – मैथ्यू आर नोल्ड (अंग्रेजी)

74. स्टडीज इन रामायण, रीडिल्स आफ रामायण–के0एस0 रामशास्त्री (अंग्रेजी)

75. स्मारिका पंचम संस्करण कार्तिक सं. 2060 देहरादून

76. दैनिक राष्ट्रबोध

77. दैनिक जागरण

78. दैनिक अमर उजाला

79. दैनिक स्वदेश

80. दैनिक आज

81. दैनिक भास्कर

82. चित्रांश ज्योति

83. भारतीय संस्कृति का इतिहास– प्रो. काली शंकर भटनागर, डा. बी.डी. शुक्ला तृतीय संस्करण 1971–72